राजस्थानी–साहित्य–माला १

राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ

डा० नरेन्द्र भानावत
एम. ए., पी-एच, डी.
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

भूमिका
डा० सत्येन्द्र
अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
ाऊस
बोरडी का रास्ता
जयपुर

प्रकाशक :

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
बोरडी का रास्ता, जयपुर

★

मूल्य ६-००

१९६५

★

मुद्रक

मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस,
जयपुर

अनुक्रम

★

अपनी बात

'राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ' मे मेरे दस निबन्ध संगृहीत है। ये निबन्ध किसी क्रम से एक साथ नही लिखे गये है वरन् अलग-अलग अवसरो पर लिखे गये हैं। 'डॉ० एल० पी० तेस्सितोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व' निबन्ध सन् १९५६ में लिखा गया था जब मैं बी. ए. का छात्र था। अखिल भारतीय फूलचन्द बाठिया लेख प्रतियोगिता में यह पुरस्कृत भी हुआ। इस ग्रंथ का अन्तिम निबन्ध 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य' मेरा नवीनतम निबन्ध है जो सन् १९६४ मे लिखा गया। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि इस सकलन मे सन् १९५६ मे लेकर १९६४ तक के बीच लिखे गये राजस्थानी साहित्य से संबंधित, मेरे दस लेख संगृहीत है। इनमे से कुछ निबन्ध 'परम्परा', 'राजस्थान भारती', 'अजन्ता' आदि पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित हो चुके है।

यह तो नही कहा जा सकता कि ये निबन्ध राजस्थानी साहित्य की सभी प्रवृत्तियो को स्पर्श करते है पर इतना अवश्य है कि राजस्थानी साहित्य की आत्मा इन निबन्धो मे झाकती रही है। पाठक इन निबन्धो को पढ़ते समय राजस्थानी साहित्य की शक्तिमत्ता, ओजस्विता, विविधता, गरिमा और लोक तत्व से परिचित होता चलता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के हिन्दी विभाग के आचार्य तथा अध्यक्ष डॉ. सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका लिखने की जो महती कृपा की है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

यदि इन निबन्धो को पढकर साहित्य प्रेमी और जिज्ञासु राजस्थानी साहित्य की विलुप्त होती हुई सम्पदा को संरक्षित करने तथा जगमगाते ग्रन्थ-रत्नो को उद्घाटित करने मे किंचित भी अग्रसर हुए तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

डॉ० नरेन्द्र भानावत

२५ अप्रैल, १९६५

भूमिका

इधर हिन्दी के वृहद् क्षेत्र मे नयें-नये अनुसंधानो से कितने ही नये-नये ग्रंथ-रत्नो का उद्घाटन हुआ है। ये ग्रंथ-रत्न अनेकों रूपो मे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इनके उद्घाटन से हिन्दी साहित्य के दृष्टिकोण का स्वरूप भी बदल रहा है और अनेको धारणाओ मे भी परिवर्त्तन हो रहा है। पंजाब मे अनेको ऐसे हिन्दी ग्रंथ प्राप्त हुए हैं जो गुरुमुखी मे लिखे होने के कारण अब तक विद्वानो की पहुँच मे नही आ पाये थे। उन पर इधर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। राजस्थान की खोजो मे भी इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकट हुई है इससे राजस्थान मे विद्यमान अतुल साहित्यिक सपत्ति का पता चलता है। कितने ही अनुसंधान हुए है और हो रहे हैं, किन्तु इस अपार संपत्ति का पूरा अनुमान अभी तक नही लग सका है। अनेको शोध-संस्थान इस कार्य मे प्रवृत्त हुए हैं, वे इस सामग्री को अंधेरे मे से बाहर भी ला रहे हैं और उनका परिचय पाने और देने के प्रयत्न भी कर रहे है। इस प्रकार इस संपत्ति का कुछ-कुछ लेखा-जोखा जहाँ-तहाँ प्रस्तुत किया गया है। आवश्यक यह प्रतीत हो रहा था कि इस सामग्री का एक व्यवस्थित विवरण भी हो। प्रस्तुत ग्रन्थ "राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ" से संभवतः ऐसे ही अभाव की पूर्ति किसी सीमा तक होती है।

डॉ० नरेन्द्र भानावत एक जाने-माने लेखक हैं। इनके कुछ कृतित्व से मैं पहले से परिचित था, पर जयपुर आने पर इनसे मिलने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और इनके कृतित्व को भी और अधिक देखने का अवसर मिला। डॉ० भानावत एक सीधे सच्चे व्यक्ति हैं, जिन्हें अध्ययन और अनुसन्धान मे रुचि है। यह छोटा-सा ग्रंथ उनकी इसी रुचि का एक प्रमाण है।

राजस्थानी साहित्य के विशाल सागर मे डुबकी लगाने पर जो रत्न निकले है, उनमे से कुछ का विवरण यहाँ इस संग्रह मे प्रस्तुत किया गया है।

इस छोटे से संग्रह में लेखक ने पहले राजस्थानी गद्य की विविध विशिष्ट शैलियों और उनमें रचे गये ग्रंथो का परिचय दिया है। इसमें हमे सं० १३०० से लेकर राजस्थानी की समस्त गद्य संपत्ति की शैलीगत समृद्धि को देखकर राजस्थानी पर गर्व होता है। यहाँ की प्रतिभाओ ने कितनी ही प्रभावपूर्ण गद्य शैलियों को स्वतंत्ररूपेण विकसित किया।

इसी प्रकार 'राजस्थानी वात साहित्यः एक पर्यालोचन' मे राजस्थानी कला-त्मक गद्य 'वात' संज्ञक परम्परा की संपत्ति का पर्याप्त विस्तार से परिचय दिया है। इसमे लेखक ने अप्रत्यक्षरूपेण लोक-कहानी के ही निर्माण की तकनीक का उद्घाटन किया है, जो न केवल राजस्थानी वात साहित्य की तकनीक है, वरन् लोक-कहानी मात्र की है।

तब इस संग्रह मे 'वेलि' विषयक तीन लेख हैं। इनमें 'वेलि' विषयक जितनी भी पृच्छाएँ हो सकती हैं उन पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला गया है। 'वेलि' की व्युत्पत्ति, वेलि परम्परा का इतिहास, विविध भाषाओ मे 'वेलि' साहित्य, वेलि साहित्य की विशेषताएँ और राजस्थानी वेलि साहित्य का सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण देकर, वीर रसात्मक वेलियो का विशेष अध्ययन किया है, और साथ ही 'वेलि- क्रिसन रुकमणी री,' का भी। डॉ० भानावत ने अपनी पी–एच. डी० के लिए 'वेलि' पर ही अनुसंधान किया था, अतः इसके तो ये विशेषज्ञ ही हैं अतः इस निबन्ध का प्रत्येक शब्द प्रमाणिक माना जायेगा।

डिंगल काव्य मे वीर और शृंगार रस का सोदाहरण धूप-छाही निरूपण बड़ा आकर्षक निबन्ध है। दो प्रमुख और प्रबल रस किस कौशल से डिंगल कवि एक छंद मे गूँथ देता है यह तो दृष्टव्य है ही, इससे राजस्थान की वीर-शृंगार-मयी सामाजिक पृष्ठभूमि का संकेत भी मिल जाता है। यद्यपि लेखक इसमे आगे नही गया, उसका दृष्टिकोण रस की झिलमिली का आनन्द प्रस्तुत करना ही रहा है, पर आगे बढने पर हमे आदिम मूल भावो की सृष्टि का अनुमान लग सकता है।

इसके आगे लेखक ने महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की प्रसिद्ध कृति 'वीर-सत-सई' में नारी-भावना के स्वरूप का उद्घाटन किया है।

'राजस्थानी लोकगीत', 'डॉ० एल. पी. तैस्सितोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व' तथा 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य' शीर्षक निबन्ध से ग्रंथ समाप्त हो जाता है।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह विदित होगा कि लेखक ने राजस्थानी साहित्य की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला है और उनसे संबधित राजस्थानी साहित्य की पर्याप्त नयी सामग्री भी दी है।

इसके साथ ही हमे लेखक की विश्लेषक प्रवृत्ति तथा सौन्दर्योन्मोषक दृष्टि का भी पता चलता है। वह राजस्थानी साहित्य की नस को पकड़ने में सक्षम है, उसके मर्म को उद्घाटित करने मे समर्थ है तथा उसकी पहुँच उन ग्रंथो तक है जो सामान्यत: उपलब्ध नही।

इस संग्रह के निबन्धो को पढकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने जो लिखा है अपने प्रत्यक्ष अध्ययन के आधार पर ही लिखा है, और यह एक बड़ी उपलब्धि है। उच्छिष्ट सामग्री के उपयोग से अनेको भ्रान्तियाँ जन्म लेती हैं, और उनकी परम्परा चलती चली जाती है। किन्तु यह भय इस लेखक की कृति शैली से नही हो सकता।

इस ग्रंथ से हमे राजस्थानी साहित्य की लोक साहित्यिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। राजस्थान मे लोक साहित्य की अद्भुत संपत्ति चारो ओर विद्यमान है। साहित्य की उठी हुई गुम्बदो की नीव के रूप मे लोक-साहित्य का परिचय प्राप्त करके एक विशेष आनन्द मिलता है। क्योकि राजस्थानी साहित्य को किसी स्तर पर भी लोक साहित्य से परहेज नही। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की भूमि मे ऐपिक-तत्त्व (पुराण काव्यत्व का तत्व) सर्वत्र विद्यमान है जिसमें आदिम मूल मनोवृत्ति की दृष्टता भी पनपती है, रोमांस के रोमाच के साथ पौरुष के पुरुषार्थ के करतब हाथ मे हाथ डाले मिल जाते हैं, और उनमे व्याप्त वह प्रतिभा भी खिलती दिखायी पड़ती है जो इस समस्त प्रपंच में मार्मिक अनुभूति को रागात्मक उक्तियो मे अभिव्यक्त करती है, जिसे महान से महान कवित्व की संज्ञा दी जा सकती है।

राजस्थानी साहित्य मे काव्य की भी अनेको अनोखी विधाएँ मिलती हैं और गद्य की भी अनेको विधाएँ मिलती हैं। इन विधाओ का परिचय पाते ही यह प्रश्न उठ खडा होता है कि इतनी विधाओ की सृष्टि क्यो हुई ? निश्चय ही मूलत: इन विधाओ का जन्म लोक-क्षेत्र मे ही हुआ है। अतः पृष्ठभूमि और साहित्य-कर्म के आधार के रूप मे राजस्थानी लोक साहित्य की झलक भी जहाँ-तहाँ हमे मिल जाती है।

डॉ० भानावत ने अन्तिम लेख मे राजस्थानी के आधुनिक कृतित्व की भी एक झाँकी दी है।

मुझे पूरा भरोसा है कि डॉ. भानावत की इस कृति का हार्दिक स्वागत होगा।

—डॉ. सत्येन्द्र

[एम. ए., पी-एच० डी०, डी० लिट्]

२४ अप्रैल, १९६५

आचार्य तथा अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियाँ

राजस्थानी साहित्य पद्य की दृष्टि से जितना विशाल, वैविध्यपूर्ण और गरिमामय है गद्य की दृष्टि से भी उतना ही विपुल और विविध प्रकार का है। राजस्थानी गद्य की महत्ता प्राचीनता की दृष्टि मे ही नही है, अपनी रूपगत एव शैलीगत विशिष्टताओ के कारण भी वह समूचे भारतीय गद्य साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। राजस्थानी पद्य साहित्य जिस प्रकार अपनी ओजस्विता, चित्रात्मकता और सजीवता के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार उसका गद्य साहित्य भी अपनी स्पष्ट भाव-व्यंजना, यथातथ्य चित्रणक्षमता और एक विशेष प्रकार की सानुप्रासिक झंकारमयी शैली के लिए विश्रुत है। प्रस्तुत निबन्ध मे हमने राजस्थानी गद्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम को न छू कर उसके रूपगत एवं शैलीगत वैशिष्ट्य को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है।

सामान्यत. किसी भी भाषा के साहित्य मे पद्य का विकास सर्वप्रथम दिखाई देता है। पर सृष्टि के आरंभ मे मानव ने अपने दैनन्दिन व्यवहार मे अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य ही स्वीकार किया होगा। यही दैनन्दिन व्यवहार की भाषा (जिसे बोली कहना अधिक युक्तिसंगत है) जब बाह्य अलकरण आदि से संपन्न हो साहित्यिक रूप (निश्चित स्वरूप) ग्रहण कर लेती है तब एक शैली बन जाती है। 'शैली' शब्द अपने आप मे कई अर्थ छिपाये है। सामान्य रूप मे यह शब्द रचना प्रणाली या रीति का बोधक है। सम्प्रति प्रचलित अर्थ मे शैली से गद्य-शैली का ही बोध होता है। प्लेटो के अनुसार जब भाषा मे लेखक की अन्तःदृष्टि और आत्म-दर्शन की सघन अभिव्यक्ति होती है, तभी शैली का जन्म होता है। यदि इस कसौटी पर राजस्थानी गद्य को (या किसी भी भाषा के प्राचीन गद्य को) कसा जाय तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि उसकी अपनी कोई शैली नही है। 'बोलो तो ताकि मै तुम्हे जान सकूं' जैसी व्यक्तिपरक शैली के दर्शन प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य मे नही होते, हाँ जातिगत या समूहगत शैली की पहचान सरलता से की जा सकती है जैसे.— जैन शैली या चारण शैली।

१— राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित जोधपुर उपनिषद् (मार्च, १९६४) मे लेखक द्वारा पठित।

शैली का सम्बन्ध मूलतः वक्तृत्व-कला मे रहा है। किसी को प्रशिक्षण देने के लिए सरल व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है और श्रोता पर प्रभाव डालने के लिए विस्तृत-अलंकृत शैली का। इन्हे क्रमशः 'एटिक' और 'एशिया टिक' शैली कहा गया है। राजस्थानी गद्य में सामान्यतः ख्यातो में पहले प्रकार की और वातो मे दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्राचीन राजस्थानी गद्य मे 'Style is the man' जैसी शैली का विकास नहीं मिलता, वहां तो गद्य के जो विभिन्न काव्य-रूप हैं उन्हे ही विभिन्न शैलियो के रूप मे देखना अधिक समीचीन होगा। इसी आधार पर हम प्राचीन राजस्थानी गद्य की विभिन्न शैलियो का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थानी पद्य साहित्य मे कई काव्य-रूप – रास, रासो, चौपई, संधि, चर्चरी, ढाल, चौढालिया, छ ढालिया, वेलि, पवाडा, फागु, मंगल, धवल बारहमासा, विवाहलो, संवाद, मातृका, बावनी, कुलक, हीयाली, रेलुका सज्झाय, स्तोत्र, स्तवन आदि—विकसित हुए। इन्हे राजस्थानी पद्य साहित्य की विभिन्न शैलियो के रूप मे देखा जा सकता है। राजस्थानी गद्य साहित्य मे भी इस प्रकार के कई काव्य-रूप— वचनिका, दवावैत, सिलोका, बालावबोध, टब्बा, ख्यात, वात, पट्टावली, वंशावली, दफ्तर-वही आदि—विकसित हुए। रेखाचित्र द्वारा प्राचीन राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियो और उनके रूपो को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—

प्राचीन राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियाँ

- (क) मौलिक गद्य
  - (१) धार्मिक
    - (अ) जैन शैली
    - (ब) जैनेतर शैली
  - (२) ऐतिहासिक
    - (अ) जैन शैली
      - (१) गुर्वावली
      - (२) पट्टावली
      - (३) वंशावली
      - (४) उत्पत्ति ग्रंथ
      - (५) दफ्तर बही
      - (६) ऐतिहासिक टिप्पण
    - (ब) जैनेतर शैली
      - (१) ख्यात
      - (२) वात
      - (३) पीढियावली
      - (४) हाल-हगीगत
      - (५) विगत
      - (६) पट्टा-परवाना
      - (७) इलकाब नामा
      - (८) तहकीकात
      - (९) जन्मपत्रियां
      - (१०) फैसला
      - (११) वसीयत नामा
  - (३) कलात्मक
    - (१) वचनिका
    - (२) दवावैत
    - (३) सिलोका
    - (४) वर्णक ग्रन्थ
    - (५) वात
  - (४) अन्य
    - (१) औक्तिक ग्रन्थ
    - (२) वैज्ञानिक
    - (३) वैद्यक
    - (४) ज्योतिष
    - (५) योग
    - (६) अभिलेखीय
    - (७) पत्रात्मक
    - (८) संस्मरणात्मक
- (ख) अमौलिक गद्य
  - (१) टीका
    - (अ) बालावबोध
    - (ब) टब्बा
  - (२) अनुवाद
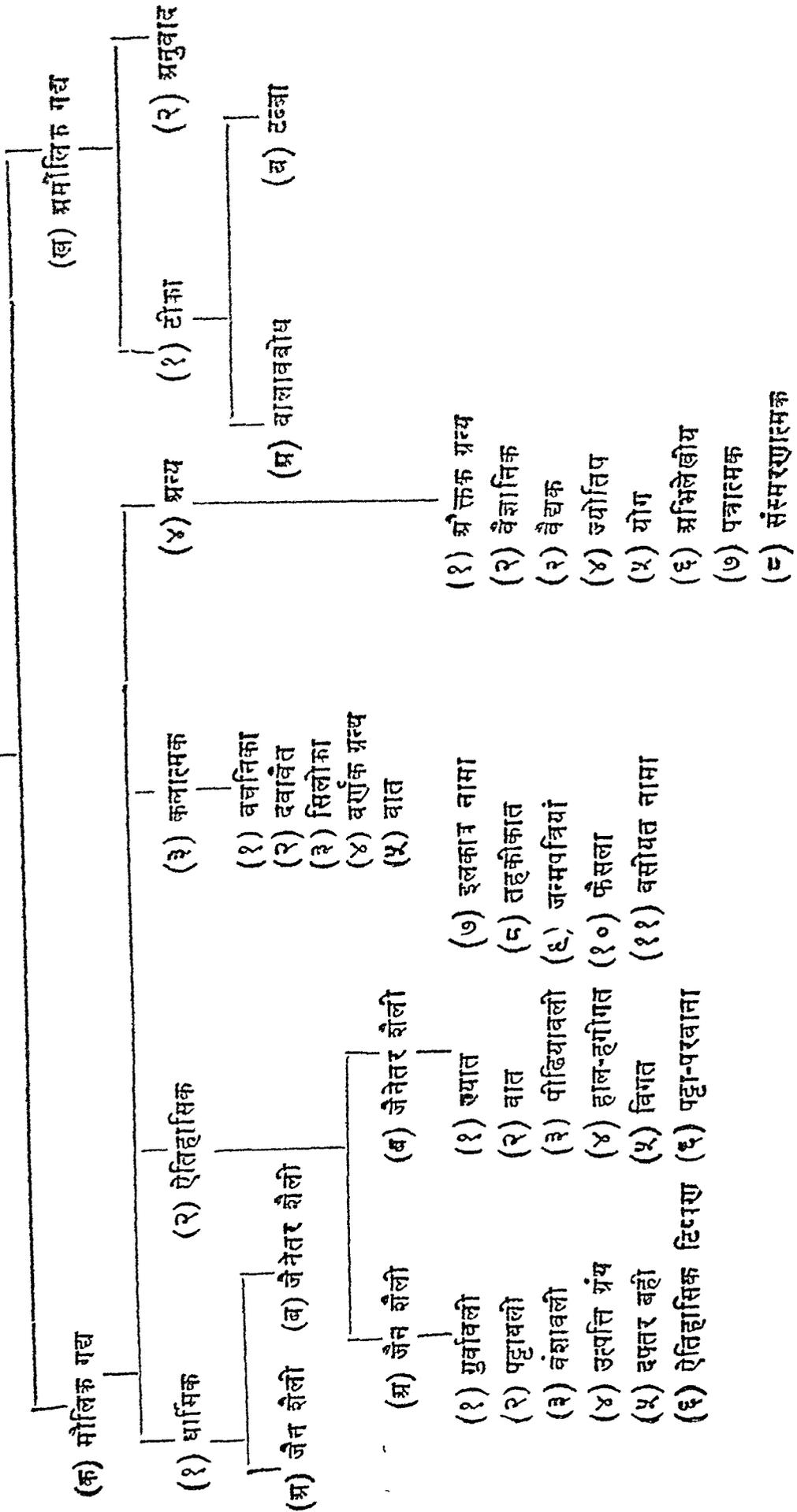
प्राचीन राजस्थान गद्य दो मुख्य रूपो मे हमारे सामने आता है । मौलिक और अमौलिक । मौलिक रूप मे गद्यकारो ने स्वतंत्र रूप मे धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक और स्फुट गद्य साहित्य की रचना की । अमौलिक रूप में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओ मे रचित विभिन्न महत्त्वपूर्ण धार्मिक, पौराणिक तथा अन्य विषयो के ग्रथो की टीकाएँ लिखी अथवा जन-साधारण तक उन्हे सुलभ बनाने के लिए उनका राजस्थानी मे गद्यानुवाद किया ।

(क) मौलिक गद्य:—

स्वतंत्र रूप से जो गद्य साहित्य लिखा गया उसके चार रूप हैं—

(१) धार्मिक गद्य :

राजस्थानी गद्य साहित्य का जो प्राचीनतम रूप मिलता है वह धर्म-भावना से अनुस्यूत है । यह धर्म-भावना मुख्यत. जैन धर्म से संबधित है । प्रयास काल[1] (सं० १३०० से १४००) मे जिन ८ रचनाओ[2] का पता चलता है वे सब जैन विद्वानो द्वारा ही रचित हैं । सं० १३३० मे रचित 'आराधना' राजस्थानी गद्य की प्रथम कृति कही जा सकती है जो कि याददाश्त के रूप मे लिखी गई एक स्फुट टिप्पणी मात्र है । इसकी भाषा सस्कृतबहुला, सामासिक पदावली से युक्त और अपभ्रंश मे प्रभावित है । विकास-काल (सं० १४०० से १६००) मे मेरुसुन्दर (अजना सुन्दरी कथा और प्रश्नोत्तर ग्रथ) पार्श्वचन्द्र सूरि, जयशेखरसूरि (श्रावक बृहदतिचार) आदि विद्वानो ने धार्मिक साहित्य की रचना की । विकसित काल (सं० १६०० से १६५०) मे आकर धार्मिक साहित्य विस्तीर्ण हुआ । अब उसमे ऐसे व्याख्यान[3] लिखे जाने लगे जिनमे पर्व-विशेष के अनुष्ठान

१—राजस्थानी गद्य साहित्य: उद्भव और विकास: डॉ० शिवस्वरूप शर्मा 'अचल' पृ० ३३

२—(१) आराधना (सं० १३३०) (२) बाल शिक्षा (सं० १३३६) (३) अतिचार (सं० १३४०) (४) नवकार व्याख्यान (सं० १३५८) (५) सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन (सं० १३५९) (६) अतिचार (सं० १३६९) (७) तत्व विचार प्रकरण (लगभग १४ वी शती) (८) धनपाल कथा (१४ वी शती)

३—श्री आदिनाथ पुत्र प्रथम चक्रवर्त्ति श्री भरत तेहनइ मरीचि इणे नामिइ पुत्र हूयउ । अनेरइ दिवसे आदिनाथ नइ केवलज्ञान ऊपनइ कुंतई अयोध्या आव्या, देवताए समोसरनी रचना कीधी, तिणि अवसर वन-पालिकि आवी भरत नई वधावणी दीधी ।

की विधि का वर्णन रहता अथवा ऐसे प्रश्नोत्तर ग्रंथो[1] की रचना होने लगी जिनमे जिज्ञासु प्रश्न करता और आचार्य उसका उत्तर देकर जिज्ञासा शान्त करते। तत्त्वचर्चा और विधि-विधान को लेकर भी कई ग्रंथ लिखे गये। साधुकीर्ति, जयसोम, शिव-निधान, समयसुन्दर, मतिकीर्ति, संत भीखणजी, जयाचार्य आदि ने स धार्मिक साहित्य को समृद्ध बनाया।

जैनेतर लोगो ने इस प्रकार के धार्मिक साहित्य की मौलिक सृष्टि बहुत कम की। उन्होने पुराणादि से अनुवाद ही अधिक किया। मौलिक रूप मे व्रत-कथाएँ ही अधिक लिखी गई। इन व्रत-कथाओ मे एकादशी, नृसिंह-चतुर्दशी, जन्माष्टमी,[2] रामनौमी, सोमवती-अमावस्या, ऋषि-पंचमी, गणेश-चतुर्थी, नाग-पंचमी आदि की कथाएँ प्रमुख हैं।[3]

धार्मिक साहित्य प्रधानत. दो शैलियो मे लिखा हुआ मिलता है। जैन-शैली और जैनेतर शैली। दोनो गद्य-शैलियो मे इतना अन्तर नही मिलता जितना जैन कवियों और चारण कवियो की पद्य शैलियो मे मिलता है। जैन-शैली अपेक्षाकृत प्राचीन होने के कारण अपभ्रंश से प्रभावित है जब कि जैनेतर शैली मे चलती भाषा का ही प्रयोग हुआ है। उसमे देशज शब्दो को भी समुचित स्थान दिया गया है। इसका एक कारण यह भी रहा कि जैनेतर शैली मे यह धार्मिक साहित्य बहुत बाद मे जाकर रचा गया। धीरे-धीरे जैन शैली भी अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हो रही थी।

१—चौबीसमे बोले समय २ अनंती हानि छै ए वचन सूत्र अनुसार छै। पिण कहणमात्र हीज नही छै समय २ एकेक वस्तु ना २ पर्याय घटै छै।

—प्रश्नोत्तरसार्द्ध शतक पत्र २ (ख)

२—भादवा-मास-अंधारा पख री आठम आवै सु जन्माष्टमी रो वरत राजा अमरीख करै छै। राजा बलीप करतो। राजा भिखीपण करतो। बिजाही बड़ा-बडा राजा जन्माष्टमी रो वरत करै छै। सु इण वरत कीया से इतरो पुन्य छै। कपिला गाय, सोवन सीगी, रूपा खुरी, ताब पुछी तितरो पुन्य हुवै। नै वले कुरुखेत माहे सुरज गिरहण माहे सोनो दीजै, सो भादरवानो दीया रो पुन्य होवै तितरो पुन्य हुवै। वले जेतराई तीरथ छै, तितरा नायारो फल हुवै, इतरो फल छै।

—राजस्थानी व्रत कथाएँ: पृष्ठ ४४

३—विशेष विवरण के लिए देखिए:—राजस्थानी व्रत-कथाएँ: सम्पादक—मोहनलाल पुरोहित।

(२) ऐतिहासिक गद्य :

धार्मिक गद्य के बाद ऐतिहासिक गद्य की परम्परा शुरू हुई। यह परम्परा जैन और जैनेतर इन दोनो शैलियो मे विकसित हुई। ऐतिहासिक गद्य-लेखन के मूल मे अपने वश, मत-सम्प्रदाय और विगत गौरव तथा वर्त्तमान जीवन के साहसिक कार्यो को अमर अमिट बनाये रखने की भावना निहित रही है। प्रशस्ति-लेखन की परम्परा तो पुराण से चली आती हुई मिलती है। यह इतिहास-लेखन का कार्य स्वतंत्र रूप से भी चला और पेशेवर लोगो द्वारा भी सम्पादित कराया गया। राजस्थानी गद्य के विकास मे इससे बड़ी सहायता मली।

धार्मिक गद्य की भाँति ऐतिहासिक गद्य को भी प्रारंभिक सहयोग जैन विद्वानो और आचार्यो का ही मिला। इन विद्वानो ने गुर्वावली, पट्टावली, वंशावली, उत्पत्ति ग्रंथ, दफ्तर-बही और ऐतिहासिक टिप्पण के रूप मे इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री को सुरक्षित रखा। गुर्वावली मे गुरु-परम्परा का विस्तृत और विश्वस्त चरित्र वर्णित रहता है। सं० १४८२ मे लिखित श्री जिनवर्धन की 'गुर्वावली' मे अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी से लेकर पचासवें पट्टधर आचार्य श्री सोमसुन्दर सूरि तक के तपगच्छीय आचार्यो का विवरण है। पट्टावली[1] में गच्छ विशेष के पट्टधर आचार्यो का जन्म, दीक्षा, साधनाकाल विहार, मृत्यु आदि का विवरण तथा उनकी शिष्य-सम्पदा और प्रभावना का यथातथ्य चित्रण निहित रहता है। उत्पत्ति ग्रंथ[2] में किसी सम्प्रदाय विशेष की उद्भवकालीन परिस्थितियो का, उसके प्रवर्त्तन के कारणो व प्रवर्त्तक की जीवन-रेखा का वर्णन होता है। ये तीनो रूप (गुर्वावली, पट्टावली, और उत्पत्तिग्रंथ) प्रधानत. जैन-श्रमणो और उनके संघो की ऐतिहासिक जानकारी से संबंधित हैं। जैन श्रावको की विवरणिका वंशावली[3] रूप मे लिखी गई है। इन वंशाव-

---

१– तत्पट्टे श्री जिनलब्धि सूरि स० १४०० वर्षे आसाढ़ वदि ६ दिने पट्टाभिषेक थया। तत्पट्टे श्री जिनचन्द्र सूरि सं० १४०६ वर्षे माह सुदी १० दिने पट्टाभिषेक थया।—वेगड़गच्छ पट्टावली

२– अंचलमतोत्पत्ति, रिषमतोत्पत्ति आदि ग्र

३– करमचन्द सागावत रो प्र० बेटा २ भागचन्द १ लखमीचन्दर २ भागचन्द रो बेटा १ मनोहरदास १ राजा सूरजसिंघ मुहता ऊपरि कोपियो तिवारे फौज विदा की धी, माणस १००० मेली साथ घर दोलो फिरीयो।—मुहता बछावतारी वंशावली

लियो मे श्रावको का वंश, उसका उद्भव और कार्य, श्रावको के वंशजों का नाम, उनका कार्य और स्थान तथा उनकी वर्तमान स्थिति का चित्रण मिलता है। दफ्तर-बही[1] एक प्रकार की डायरी-शैली है जिसमे रोजनामचे की भाँति दैनिक व्यापारो का विवरण लिखा जाता है। इस विवरण मे न विषय का क्रम होता है न घटनाओ का क्रम। ऐतिहासिक टिप्पण[2] एक प्रकार के स्फुट ऐतिहासिक नोट हैं, जिन्हे व्यक्ति विशेष ने अपनी रुचि के अनुसार सगृहीत कर लिया है।

जैनेतर विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य को जैन विद्वानो की अपेक्षा अधिक व्यापक परिवेश मे देखा। इसका कारण यह रहा कि जब अकबर ने सं० १५७४ मे पृथक रूप से अपने यहा इतिहास विभाग की स्थापना की तो देशी राज्यो के अधिपति भी बादशाह की दृष्टि मे अपने आपको ऊँचा साबित करने की प्रतिस्पर्धा से अपनी मान-मर्यादा का चित्रण इतिहास लिखवा कर कराने लगे। यही लेखन-प्रणाली 'ख्यात' कहलाई। इसके पूर्व भी कुलगुरु, महात्मा और भाट वंशावली तथा पीढियावली लिखा करते थे। लगता है ख्यात इन्ही वंशावलियो और पीढियावलियो का विकसित और प्रौढ रूप है। इन ख्यातों मे सामान्यतः प्रसिद्ध राज-वंशो और राजाओ का वंशानुक्रम तथा राज्यानुक्रम मे कालक्रमानुसार वर्णन रहता है। यह ठीक है कि कही-कही ख्यातकारो ने अपने आश्रयदाता राजाओ की अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा की है फिर भी मध्ययुगीन सामन्ती जीवन के सामाजिक इतिहास की दृष्टि से इनका अध्ययन बडा महत्वपूर्ण है।

श्री राधेश्याम त्रिपाठी ने इन ख्यातो को चार भागो मे विभाजित किया है (१) इतिहासपरक ख्यात (२) वारतापरक ख्यात (३) व्यक्तिपरक ख्यात (४) स्फुट ख्यात। इतिहासपरक ख्यात मे किसी एक ही राजवंश के राजाओ का जन्म से लेकर मृत्यु तक विशद वर्णन काल-क्रम से लिखा जाता है। 'दयालदासरी ख्यात' इस वर्ग की प्रतिनिधि रचना है। इसमे बीकानेर के राव बीकाजी से लेकर महाराजा अनूपसिंह तक का इतिहास दिया गया है। दयालदास ने इतिहास धर्म की पूरी रक्षा की है। उसने जहा अपने चरित्र-नायको की विजयदुंदुभी

१– संवत् १८०६ वर्षे फाल्गुन वदि ११ इष्ट घस्य ११/२५ तदा गुलालचंदरै शिष्य विजयचन्दरी दीक्षा. दीक्षा रो ग्रंथ रामचन्द्र चद्रिका भडार दाखल कीधो।

२– सं० १६१४ चैत्र वदि ६ निवाव कासमखान जैतारण मारी राठौड रतनसिंघ खीवावत काम आयो। कोट माहि छतरी छै। कोट तो ऊदा सूजावत करायो छै।

३. मध्यकालीन ख्यात साहित्यः परम्परा, भाग १५–

का तन्मय होकर वर्णन किया है वहा उनकी विवशताओ और दुर्बलताओ को भी तटस्थ-भाव से देखा है। वारतापरक ख्यात की प्रतिनिधि रचना 'मुंहता नैणसीरी ख्यात' है। नैणसी ने ख्यात-रचना पद्धति को नवीन रूप दिया। उन्होने ख्यात का स्वरूप केवल राजवंशी क्रमवद्धता तक ही सीमित न रखकर उसे विविध वार्त्ताओ के संकलन की दृष्टि तक विकसित कर दिया। इस संकलन से जो इतिहास का रूप निखरता है वह किसी एक राजवश का न होकर विभिन्न राजवशो और विविध प्रदेशो का है। यहा जो वार्ताएँ आई है वे कलात्मक गद्य की वातें न होकर विशुद्ध ऐतिहासिक वार्ताएँ है जिनका उद्देश्य घटना-वैचित्र्य और मनोरंजन न होकर तथ्यचित्रण और इतिहास-लेखन है। व्यक्तिपरक ख्यातो मे ख्यात लेखक ने अपने किसी एक आश्रय दाता की जी भर कर प्रशंसा की है, उसके पराभव को भी विजयश्री से मंडित दिखलाया है। इन ख्यातो का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से न्यून है पर तत्कालीन जीवन के सामाजिक अध्ययन की दृष्टि मे अधिक है। स्फुट ख्यातो मे उन रचनाओ को रक्खा जा सकता है जो छोटे-छोटे फुटकर 'नोट्स' के रूप मे हैं और जिनका कोई क्रम नही है। 'बाकीदासरी ख्यात' ऐसी ही रचना है। इसमे २७७६ बातो का संग्रह है। सच्चे अर्थो मे इसे ख्यात नही कहा जा सकता क्योकि "लेखक को जब जो वात नोट करने योग्य मिली, उसने तभी उसे नोट कर लिया। उनमे कोई क्रम नही है। क्रम से लगाने पर भी उससे शृंखलावद्ध इतिहास नही वनता। अधिकाश वाते दो-दो अथवा तीन-तीन पंक्तियों की ही है। पूरे पृष्ठ तक चलने वाली वात कोई बिरली ही है"।[१]

ख्यात के अतिरिक्त वात, हाल, हगीगत, विगत, आदि ऐतिहासिक गद्य के अनेक रूप मिलते हैं। 'ख्यात' की मुख्य विशेषता यह होती है कि उसमे सामन्यतः प्रवन्ध रूप मे लिखा हुआ क्रमानुगत वर्णन होता है जबकि ये अन्य रूप किसी एकाध प्रसंग को लेकर ही अपनी यात्रा समाप्त कर लेते हैं। 'ख्यात' और इन 'वात' आदि अन्य रू[पो के] बीच एक तीसरा रूप और है जिसमे प्रधानतः एक व्यक्ति के जीवन से संबंधित घटनाओ का विस्तृत वर्णन तथा अन्य प्रासगिक उल्लेख भी रहते हैं। इस रूप को फारसी के नामा[२] नामक ग्रन्थो के समकक्ष रखा जा सकता है। दलपत विलास[३] इसी प्रकार का एक ग्रन्थ है जिसमे बीकानेर

१—वाकीदास री ख्यात : श्री नरोत्तमदास स्वामी, प्रस्तावना पृ० २
२—बाबरनामा, हुमायूँनामा, अकबरनामा, जहाँगीरनामा आदि ग्रन्थ।
३—सम्पादक : रावत सारस्वत, प्रकाशक—सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर।

के महाराजा रायसिंह के द्वितीय पुत्र दलपतसिंह की किशोरावस्था, दीवान कर्मचन्द वच्छावत के कार्य, रायसिंहजी के पुत्र भोपत का रुष्ट होना, उसका मारा जाना, दलपतसिंह को मारने का षडयंत्र, बाल्यकाल मे दिखलाई गई उसकी वीरता, अकबर के दरबार मे की गई उसकी सेवाओ आदि का वर्णन है। राजस्थानी पद्य मे तो इस प्रकार के कई चरित्र ग्रंथ लिखे गये हैं पर राजस्थानी गद्य मे लिखा गया यह अकेला ही चरित्रग्रंथ है जो भी अधूरा।

पट्टा-परवाना, इलकावनामा, जन्म-पत्रियाँ तथा तहकीकात भी ऐतिहासिक गद्य के अन्य रूप हैं। राजाओ द्वारा दी गई जागीरो का अधिकार—पत्र और उसका विवरण पट्टा कहलाता है तथा उसका राजकीय आज्ञा-पत्र परवाना। पत्र-व्यवहार के संग्रह को इलकावनामा और प्रसिद्ध पुरुषो की जन्मकुण्डलियो को जन्मपत्रियाँ कहा जाता है। तहकीकात मे किसी मामले की छानबीन से संबंधित पक्ष-विपक्ष के प्रश्नोत्तरो का संग्रह होता है। फैसला और वसीयतनामा भी इस गद्य का एक प्रकार है।

ऐतिहासिक गद्य दो शैलियो मे लिखा मिलता है। जैन शैली और जैनेतर या चारण शैली। जैन शैली की भाषा बोलचाल की भाषा है पर उसमें संस्कृत विभक्तियो का प्रभाव स्पष्ट है। तथ्यो को छिपाने या उनमें आमूलचूल परिवर्तन करने की प्रवृत्ति यहाँ नही है। आचार्यो की प्रशस्ति मे आलंकारिक शैली का व्यवहार अवश्य हुआ है पर उसमे ऐतिहासिक मर्यादा भंग नही होती। इतिहास की विश्वस्तता और यथातथ्यात्मक सामग्री संकलन की ईमानदारी के दर्शन यहाँ अधिक होते हैं। जैन शैली के लेखक सामान्यत: जैन संत या श्रावक रहे है, वे किसी के राज्याश्रय मे नही पले थे। अत. किसी लौकिक राजा की शब्द-चापलूसी उन्हे नही करनी पड़ती थी। चारण शैली की भाषा मे अधिक परिमार्जन और सौष्ठव मिलता है। राजकीय कर्मचारियो द्वारा जो साहित्य लिखा गया उसमें इतिहास के कई स्थल संदिग्ध और अप्रामाणिक हैं पर स्वतंत्र रूप मे जो ख्यातादि साहित्य लिखा गया वह अधिक विश्वसनीय है। इन लेखको ने अपनी भाषा में अरबी, फारसी के शब्दो का काफी प्रयोग किया है क्योकि इनका सम्बन्ध मुगल वातावरण से अधिक निकट का रहा। भाषा मे प्रवाह और रोचकता दोनो हैं। लोकोक्तियों और मुहावरो का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

(२) कलात्मक गद्य :

कलात्मक गद्य की सृष्टि राजस्थानी साहित्य की अपनी मौलिक सृष्टि है।

व्रजभाषा मे कला के क्षेत्र मे गद्य का कोई रूप प्रतिष्ठित नही हुआ। गद्य को साधारण ढग मे ही व्यक्त किया गया। बारीकी, कटाव छंटाव व बनाव को पद्य के लिए ही सुरक्षित रखा। राजस्थानी गद्य मे यह कलात्मक रूप मुख्यतः ५ विधाओं मे मिलता है—वचनिका, दवावैत, सिलोका, वर्णक ग्रंथ और बात। इनमे से प्रथम तीन विधाएँ गद्यबद्ध भी है और पद्यबद्ध भी है। संक्षेप मे शैली की दृष्टि से यह कलात्मक रूप दो भागो मे विभाजित मिलता है (१) गद्य-पद्यात्मक और (२) गद्यात्मक। इन्हे तुकान्त गद्य और अतुकान्त गद्य भी कहा जा सकता है।

राजस्थानी गद्य की यह अन्त्यानुप्रास-शैली फारसी की अनुप्रासात्मक गद्य शैली और प्राकृत की कथा-आख्यायिकाओ मे प्रयुक्त गद्य शैली से प्रभावित हो उठी है। 'वचनिका' विधा इस प्रकार की महत्वपूर्ण शैली है। डॉ॰ टैसी टोरी ने वचनिका की पहचान बतलाई है गद्य की तुकात्मकता, जिसे वामन द्वारा बताए गए वृत्तगन्धि (जिसमे कहीं पर पद्य सा आभास हो) की कोटि मे रखा जा सकता है[1]। पर यही मात्र पहचान 'वचनिका' की नही है। गद्य की तुकात्मकता तो और रूपो मे भी मिलती है। 'रघुनाथ रूपक' मे दिये गये 'वचनिका' के लक्षण को संशोधित करते हुए श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है[2]—वचनिका के दो भेद होते हैं—

(क) पद्यबद्ध (या पदबद्ध) जिसमे मात्राओ का नियम होता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) जिसमे आठ-आठ मात्राओ के तुक युक्त गद्य खण्ड हो और

(२) जिसमे बीस-बीस मात्राओ के तुक युक्त गद्य खण्ड हो।

(ख) गद्यबद्धः—जिसमें मात्राओ का नियम नही होता। इसके भी दो भेद होते हैं—

(३) वारता (कहीं-कहीं तुकान्त गद्य के लिए भी वात, वार्त्ता या वार्तिक नाम का प्रयोग देखा जाता है। या साधारण गद्य।

(४) तुक युक्त गद्य।

'वचनिका' चारण और जैन दोनो शैलियो मे मिलती है। चारण शैली मे लिखी गई 'अचलदास खीचीरी वचनिका' (सिवदास कृत) और 'राठौड़ रतनसिंह जी महेसदासौत री वचनिका' (खिड़िया जग्गा कृत) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

१— मध्यकालीन हिन्दी गद्य : श्री हरिमोहन श्रीवास्तव, पृ० ४१

२—राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ मे लिखित 'राजस्थानी गद्य काव्य की परम्परा' शीर्षक लेख।

पहली कृति मे गागरौन के खीची शासक अचलदास और माडू के सुलतान अलप-खा गोरी[1] का युद्ध वर्णन तथा राजपूतो के जौहर का दृश्य है। इसमे गद्य और पद्य साथ-साथ चलते । गद्य-भाग मे युद्ध और सज्जा-वर्णन है तो पद्य भाग मे जौहर-वर्णन। गद्यात्मक काव्य और काव्यात्मक गद्य का सशक्त परिचय इस ग्रंथ मे पहलीबार मिलता है। यहा जो गद्य प्रयुक्त हुआ है वह तुकान्त[2] भी है और अतुकान्त[3] भी। दूसरी कृति मे उज्जैन के समीप हुए युद्ध का वर्णन है। इसने जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की ओर से औरंगजेब और मुराद के खिलाफ लडते हुए रतलाम नरेश श्री रतनसिंह काम आये। ये रतनसिंह ही इसके नायक हैं · इसमे गद्य का अंश बहुत ही कम है। अनुप्रासान्त गद्य[4] का प्रवाह देखते बनता है।

जैन शैली मे लिखी गई दो वचनिकाएँ मिली हैं (१) जिनसमुद्रसूरि की वचनिका और (२) शान्तिसागर सूरि की वचनिका। पहली वचनिका मे राव मातल के यश का वर्णन है जिन्होने जिन समुद्र सूरि को ससम्मान अपनी राजधानी मे आमंत्रित किया था। दूसरी वचनिका मे शातिसागर सूरि के यश एवं विभिन्न राजघरानो द्वारा किये गये उनके स्वागतोत्सवो का वर्णन है। दोनो रचनाएँ अन्त्यानुप्रासात्मक गद्य मे लिखी गई । वर्ण्य-विषय को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चारण शैली मे लिखी गई वचनिकाएँ जहाँ युद्ध, जौहर, मृत्यु

१—डॉ० दशरथ शर्मा ने 'साहिआलम' और 'गोरीराव' का यह शुद्ध नाम दिया है। —अचलदास खीचीरी वचनिका: सं० दीनानाथ खत्री मे डॉ० शर्मा का लेख, पृ० ५-६

२—बाहरि साहिझाड़, साहि विभाड, वलियां साहि कंधि कुदाल, सबल साहि मान-मरदन, निबल साहि थापना चारज, संग्राम साहि ·· पृ० २१

३—इसी परित्यां लडतां लागता मरता मारता महा अस्टमी भारथ जुध मातउ घउ, त्या दूसरी अस्टमी आइ संप्राप्ती हुयी। जत्र-तत्र ग्रिद्ध मसाण करक की वाडि। अरधो-अरधी दुवइ दल आवरया। पृष्ठ २४

४—मु नीसरो महाभारत आगम कहता उजेणि खेत,
अगनि सोर गाजसी।
पवन वाजसी॥
गजबंध छत्रबंध गजराज गुडसी।
हिन्दु असुराइण लड़सी॥

आदि से संबन्धित हैं वहाँ जैन-वचनिकाएँ जैनाचार्यों के यश, प्रभाव, स्वागत-समारोह आदि से आबद्ध है। वचनिका शैली ने आगे चलकर ब्रजभाषा को भी प्रभावित किया फलस्वरूप ललितकिशोरी और ललित मोहिनी की 'श्री स्वामीजी महाराज की वचनिका' अस्तित्व मे आई[1]।

कलात्मक गद्य का दूसरा रूप 'दवावैत' है। यह रूप फारसी रचना शैली से राजस्थानी मे आया। पंजाब मे वैतो का प्रचार काफी रहा 'वैत' शब्द अरबी भाषा का है। फिरदौसी ने 'शाहनामा' इसी 'वैत' छन्द मे लिखा है। यह 'वैत' छन्द पिंगल के गीता छन्द (कुल २६ मात्राएँ, १४, १२ पर यति) से मिलता-जुलता है[2]। 'दवावैत' इससे भिन्न प्रकार की रचना लगती है। 'रघुनाथरूपक' के आधार पर इसका लक्षण स्पष्ट करते हुए नाहटाजी ने लिखा है—दवावैत के दो भेद होते हैं (१) पद्यवद्ध (या पद वद्ध) इसमे २४-२४ मात्राओ के तुक युक्त गद्य खण्ड होते हैं (२) गद्यवद्ध— उसमे तुकयुक्त गद्यखण्ड होते हैं, मात्राओ का कोई नियम नही होता। वचनिका के चतुर्थ भेद और दवावैत के द्वितीय भेद मे कोई अन्तर नही दीख पड़ता।

दवावैत संज्ञक रचनाएँ जैन और चारण दोनो शैलियो मे लिखी गईं। नाहटाजी ने जैन शैली मे लिखित तीन दवावैतो। (जिन सुख सूरि, महारावल लखपत और जिनलाभ सूरि) का उल्लेख किया है[3]। चारण शैली मे लिखित २२ दवावैतो की सूचना सौभाग्यसिंह शेखावत के लेख से मिलती है[4]। इन रचनाओ का वर्ण्य-विषय विविध है। जैन दवावैतो में सामान्यत चरित्र-नायक की गुण-गाथा गाई गई है। पर चारण-शैली में लिखित ये दवावैतें चरित्र-नायक की गुणावली के अतिरिक्त नगर, युद्ध, राज्य, वैभव, आखेट नखशिख आदि विभिन्न विषयो के वर्णन से सबंधित हैं। जैन शैली की इन रचनाओं मे गद्य तुकान्त और प्रवाह युक्त है[5]। चारण शैली में कही–कही पद्य मे पाये

१—मध्यकालीन हिन्दी गद्य: हरिमोहन श्रीवास्तव : पृ० ५२

२—राजस्थानी साहित्य मे प्राप्त दवावैत रचनाएँ : श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, शोधपत्रिका वर्ष १३ अंक ४ पृ०, ३४

३—प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा: श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० ११५–१२०

४—शोधपत्रिका, वर्ष १३ अंक ४ पृ०, ३४–५०

५—अहो आओ वे यार, वैठो दरबार।
स चाँदनी रात, मजलस की बात ॥—जिनसुखसूरि दवावैत : रामविजयकृत

जाने वाले प्रसिद्ध शब्दालंकार वयणसगाई की छटा भी यहां गद्य में दिखाई देती है[1] । सौन्दर्य-वर्णन में जिन उपमाओं का प्रयोग किया गया है वे भाषा को लालित्य ही नही प्रदान करती वरन् स्थानीय रंग को भी मुखर करती है[2] ।

कलात्मक गद्य का तीसरा रूप हैं 'सिलोका' । इसे सलोका भी कहा जाता है । इसका मूल शब्द 'श्लोक' है । इसकी रचना का प्रारंभिक कारण वर की शिक्षा एवं बुद्धिपरीक्षा लेना रहा होगा । साले के द्वारा कुछ श्लोक कहे जाकर वर को भी उत्तर में कुछ श्लोक बोलने की प्रथा रही होगी । 'रघुनाथरूपक' मे इसे गद्य का ही एक प्रकार माना है । अन्त मे तुक मिलने और शब्दो की सीमितता के कारण यह शैली[3] काव्य जैसी लगती है । इसके निर्माण मे जैन-जैनेत्तर सभी विद्वानो तथा साधारण लोगो ने भी योग दिया है। इनका वर्ण्य-विषय मुख्यतः देवी-देवताओं और वीर-पुरुषो का गुण-गान ही रहा है ।

कलात्मक गद्य का चौथा रूप 'वर्णक' ग्रन्थो की रचना है । इन ग्रंथो में विभिन्न वस्तुओं के वर्णन का संग्रह होता है । यह वर्णन सार्वजनिक रीति से किसी वस्तु विशेष—देश, नगर, वन, समुद्र, नदी, राजा, युद्ध, स्त्री, पुरुष, प्रकृति, कला, देव, भोजन आदि के लिए आदर्श रूप में स्वीकृत होता है । 'सभा शृंगार' ऐसे ही वर्णक ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण संकलन है ।

इसमे राजस्थानी गद्य की तुकात्मकता, आलंकारिकता,[4] चित्रात्मकता और

१—पूर्व की तरफ राजावटी देश । रोझूं का रैवास । भाडूं का भेश । घूरतों का धाम । मंगतूं का मोहल्ला । कंगालूं का कोट । हीजड़ूं का सहर, जारूं का जोट, चुंगलूं का चबूतरा, सगलूं का रैवास, कुकरमूं का कोठार, अधमूं का ऐवास ।—ठाकुर रघुनाथसिंह जी की दवावैत: दुर्गादत्त बारहठ कृत ।

२--आभा की बीज । सावण की तीज ॥ नैह की सागर । अम्रत की गागर ॥ पूंगल को लहर्जौ । हेत को हैर्जौ ॥ रेशम को लछौ । कुरज को बच्चौ ॥

३—बोले सीतापत इसड़ीजी वाणी, सुरनर नागा ने लागै सुहाणी ॥
सेसाजल हणमन्त जिमही सरसाई, वीरां अवरां री कीधी वड़ाई ॥
—रघुनाथ रूपक

४—किसी एक विरहिणी हुई ?
विरहावस्था, आहारि ऊपरि करइ अनास्था ।
सर्व शृंगार, मानइ अंगार ।
चन्द्र तपइ पान, थ्यां विखवान ।
विरहानल,प्रज्वलइ अंगु, सखी जन स्यूं विरंग—सभा शृंगार, पृ० ११०

प्रवहमानता[1] के एक ही साथ दर्शन होते हैं। नाहटाजी ने 'सभाश्रृंगार में' केवल जैन शैली मे लिखित वर्णक ग्रंथो का ही संकलन किया है। चारण-शैली में लिखित वर्णक ग्रंथ भी काफी संख्या मे मिलते हैं। राजान राउत रो वात वणाव, खीची गंगेव नीवावत रौ दोपहरो, वाग्विलास या मुत्कलानुप्रास इस संदर्भ मे द्रष्टव्य हैं।

कलात्मक गद्य का अन्तिम रूप 'वात' साहित्य है। यह साहित्य विपुल परिमाण मे मिलता है। सामान्य रूप मे इसे कहानी का पर्याय कहा जा सकता है। पर इसकी टेकनीक वर्त्तमान कहानी से नितान्त भिन्न है। ये वातें मूल रूप से 'कहने के लिए' रची गई है। इनके रचनाकार का व्यक्तित्व लोक-रुचि मे घुन-मिल गया है। इसीलिए इन्हें लोक साहित्य की परिधि मे रखा जा सकता है। इनको 'कहने' और 'सुनने' की एक विशेष प्रणाली है। कथा कहने वाला वात कहता चलता है और सुनने वाला 'हुंकारा' देता रहता है। इसमे वक्ता और श्रोता के बीच एक प्रत्यक्ष सजीव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो रस निष्पत्ति मे बडा सहायक होता है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से ये वातें विविध प्रकार की हैं। इनमे प्रेम की रंगीनी है तो युद्ध की आग भी, पौराणिक युग की अलौकिकता है तो इतिहास की वस्तुस्थिति भी, पारिवारिक दुर्वलताओ पर तीव्र प्रहार है तो सामाजिक विसगतियो पर करारा व्यंग्य भी। मुख्य कथा के साथ कभी २ कई प्रासगिक कथाएं जुडी रहती हैं, यही नही प्रासगिक कथाओ मे भी फूल की पँखुडियो की भाँति अन्य कथाएँ छिपी रहती है जो धीरे २ खुलती जाती है। इन वातो की पात्र सृष्टि जड-चेतन, कीट-पतंगो, मानव-देव-दानव आदि सभी क्षेत्रो तक व्याप्त है। अलौकिक तत्व यहा सहज ही कथा के

१—दुष्ट स्त्री का यह चित्र देखिए—

काली, कंकाली। काणी, कोचरी।
कुरूप, कुत्सित।
काकजंघा, काकसरी।
कुहाडि, कुलक्षिणी,
सापिणी, पापिणी
सुंखिणी, नरगिणी
लावडी, बोवडी।
सडी, पडी।—सभाश्रृंगार: सं० अगरचन्द नाहटा, पृ० १०६

साथ आबद्ध हो गये है। कथा का आरंभ सामान्यतः वातावरण से होता है। यह वातावरण भौगोलिक भी हो सकता है और सास्कृतिक भी। वर्णनो की अधिकता, भापागत प्रवाह, संवादो की नाटकीयता, उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्तो की चारुता तथा बीच २ मे पद्यबद्धता इस वात साहित्य की सामान्य विशेषताएँ हैं।

(४) अन्य रूप :

धार्मिक ऐतिहासिक और कलात्मक गद्य के विभिन्न रूपो के अतिरिक्त भी राजस्थानी गद्य का प्रयोग वैद्यक, ज्योतिष, वैज्ञानिक, योगशास्त्र, व्याकरण आदि ग्रंथो के लेखन मे किया गया। इस प्रकार का साहित्य अभी बहुत कम प्रकाश मे आया है। लगता है इस ओर स्वतन्त्र लेखन के प्रयोग विशेष हुए भी नहीं। हाँ, औक्तिक ग्रंथ (व्याकरण सम्बन्धी) अवश्य ज्यादा लिखे गए। सं० १८३६ मे लिखित 'बालशिक्षा' इसी प्रकार का व्याकरण ग्रंथ है। संस्कृत व्याकरण को सरल-सुगम राजस्थानी गद्य मे समझाया गया है कुलमडन कृत 'मुग्धावबोध औक्तिक', सोमप्रभ सूरि कृत 'औक्तिक' तथा तिलक कृत 'उक्ति संग्रह' इसी प्रकार की रचनाएँ है।

शिलालेख और पत्र सम्बन्धी गद्य की देन भी विशेष मूल्यवान है। ये शिलालेख ऐतिहासिक स्मारक, धार्मिक अनुष्ठान, विशेष राजाज्ञा आदि विभिन्न विषयो से सम्बन्ध रखते हैं। पत्रात्मक साहित्य का महत्व तत्कालीन लोक रुचि और भाषा के विकास दोनो दृष्टियो मे है। ये पत्र नरेशो और जैनाचार्यो, जैनाचार्यो तथा श्रावको एवं जन साधारण के सामान्य व्यवहारो से संबंधित है। आरभ मे पत्रो का प्रचलन समाचार-प्रेषण की दृष्टि से ही हुआ पर कालान्तर मे वह साहित्यिक विधा का एक अंग ही बन गया। विभिन्न सामाजिक स्तर और रिश्तो के अनुरूप पत्रो की विविध शैलियाँ भी बन गईं। सास ने अपने दामाद को पत्र लिखा तो उपमाओ की झड़ी ही लगादी[1] और पति ने

१—सीध श्री वाली दीस भुर्जा दास साचो दीस सुभ सुथानेर सरब ओपमा वीराजमान बडी बडी ओपमा भारी भारी ओपमा नीकी नीको ओपमा गुणा रा सागर भाखर जिसा भारी सजंदो जिसा अयाग गउ ब्राह्मण रा प्रतपालक षट दरसण रा पाषणहार पपियारी पाँख। जीवरा आधार। जीवरी जड़ी। कालजै री कोर। चढतै तेज। वधती वेल। हीरा पन्ना री खाण। मोतियां रा आगर। केसर री क्यारी....अनेक ओपमा लायक राज श्री १०८ श्री कंवर जी सा श्रो...सदा चिरंजीवो, कोड़ वरस कायम रहो... आदि आदि।

अपनी स्त्री को पत्र लिखा तो उसके रूप की लडी ही पिरो दी[1]।

१६ वी शती मे संस्मरणात्मक गद्य के भी दर्शन होते हैं। 'भिक्खु-दृष्टान्त' मे तेरापंथ सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्त्तक स्वामी भीखणजी के ३१२ जीवन प्रसंगो को संकलित किया गया है। ये प्रसंग उनके अन्तेवासी शिष्य मनि हेमराजजी द्वारा लिखित हैं। इन प्रसंगो मे संस्मरणकार की ईमानदारी, सचाई और सहज स्वाभाविकता है। 'इन हूबहू चित्रित जीवन-पटो से स्वामीजी के जीवन, उनकी वृत्तियो, उनकी साधना और उनके विचारो पर गंभीर प्रकाश पड़ता है" इनके द्वारा राजस्थानी गद्य का एक नया रूप सामने आया है जो भाषा की दृष्टि से ही नही तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक चेतना के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। 'पोथी और पाना' के पारस्परिक सम्बन्ध का कितना दार्शनिक गूढ पर सरल विवेचन यहाँ देखने को मिलता है[2]।

(ख) अमौलिक गद्य:

अमौलिक रूप से लिखा गया जो राजस्थानी गद्य मिलता है उसके दो प्रकार हैं। (१) टीका और (१) अनुवाद। इसमे टीकात्मक गद्य ही विपुल परिमाण मे मिलता है।

१—स्वस्त श्री सुभ सुथाने ''स्वस्त श्री गोम सुभ सुथाने सकल कला प्रवीण चौसट कला निधान। मन भावन सुख उपजावन। आभारी वीज। सावण री तीज। भादवा री घटा। किरत्या रो भूमका '' जोग गाव सुं लिषतु सुख स्नेह प्याला री मनवार ढोलिया वैसणें वंचावसी'''थांरे डीला रा जतन करजो म्हेतो थांने घड़ी भूला नही रात दिवस मन मे वसावा छा आदि।
—शोध पत्रिका : वर्ष १३ अंक ३, पृ० ७५

२—केइ कहै पोथी आग णै मेलणी नही। पूठ देणी नही। पोथी पाना तो ज्ञान हैं। तिणरी आशातना करणी नही। जद स्वामीजी बोल्या : पोथी पाना ने थें ज्ञान कहो छो तो पोथी पानां फाट गया तो काइ ज्ञान फाट गयो। अथवा पोथी पाना सिड़ गया तो काई ज्ञान सिड़ गया। पाना उड़ गया तो काई ज्ञान उड गयो। पानां वल गया तो काई ज्ञान बल गयो। पाना चोर ले गया तो कांइ ज्ञान ने चोर ले गया। पानां तो अजीव है। अनें ज्ञान जीव है। अक्षरा को आकार तो ओलखणें रे वासते छै। पानां मे लिख्या त्यारो जाणपणो ते ज्ञान है। ते आतमा छै। आपरे कनै छै। अनें पानां अनेरा छै।—भिक्खु दृष्टान्त संग्रहकर्त्ता श्रीमद जयाचार्य, पृ०८५

(१) टीकात्मक गद्य :

टीकात्मक गद्य के निर्माण मे जैन विद्वानो का योग सबसे अधिक रहा। जैनाचार्य और जैन संत अपने धर्म को जन साधारण तक पहुँचाना चाहते थे। इनके मूल धार्मिक ग्रंथ प्राकृत भाषा मे ही लिखे हुए मिलते हैं। सामान्य वर्ग तक उसमे निहित सिद्धान्तो को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक था कि प्रचलित जन-भाषा मे उनकी व्याख्या की जाय, उनके शब्दार्थ समझाये जाय। फल स्वरूप यह टीकात्मक गद्य दो रूपों मे सामने आया। बालावबोध और टब्बा। बालावबोध एक विशेष प्रकार की टीका-शैली है जिसमे मूल ग्रंथ की व्याख्या ही नही की जाती वरन् मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न कथाएँ भी कही जाती है। ये कथाएँ परम्परागत, काल्पनिक या लोक-कथाओ मे से चुनी जाती हैं। इनका अन्त धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार कर दिया जाता है। यह कथा-भाग ही इस शैली की मुख्य विशेषता है। इस टीका को पढ कर बालक जैसा अपढ या मंद बुद्धि वाला व्यक्ति भी मूल सिद्धान्त को समझ सके इसी-लिए इसे 'बालावबोध' कहा गया है। इस प्रकार की टीकाएँ सामान्यतः जैना-गमों, स्तोत्र, चरित्र एवं दार्शनिक ग्रंथो पर लिखी गई है। टीकात्मक गद्य का सर्वप्रथम उदाहरण सं० १३५८ मे लिखित 'नवकार व्याख्यान' का मिलता है। इसकी शैली रूढिबद्ध टीका जैसी है। सच्चे अर्थों में बालावबोध शैली का आरभ आचार्य तरुणप्रभ सूरि से होता है। उन्होने षडावश्यक बालवबोध मे सस्कृत, प्राकृत के अंशो को लोकभाषा मे समझाया है[1]। इसे समीक्षा की व्याख्यात्मक शैली के रूप मे भी देखा जा सकता हैं। सोम सुन्दर सूरि ने उपदेशमाला बालावबोध (प्राकृत से) और योगशास्त्र बालावबोध (संस्कृत से) की रचना की। मेरू सुन्दर ने सबसे अधिक लगभग १७ बालावबोध लिखे। इनके बाद लगभग ११ बालावबोध लिखने वाले है पार्श्वचन्द्र सूरि।

ये बालावबोध जैन-ग्रंथो पर ही नही लि गये अजैन ग्रंथो पर भी जैन विद्वानो ने कलम चलाई है। राठौड कवि पृथ्वीराजकृत 'वेलि क्रिसन रुक्मणी'री पर शिव निधान, जयकीर्ति, कुशलधीर, लक्ष्मीवल्लभ आदि जैन विद्वानो की मारवाड़ी भाषाओ की टीकाएँ मिलती है।

१—इसी परि महाविषाद करतउ जिनदत्तु लोकि जाणिउ। किं बहुना, राजेन्द्र पुणि जाणिउ। धन्यु जिनदत्तु जु इसी परि भावना भावइ। तदा तिणि नगरी केवली आविउ! राजादि के लोके वान्दी पूछिउ—भगवन् जिनदत्तु पुण्यवन्तु, किंवा अभिनवु पुण्यवन्तु, केवली कहीइ जिनदत्तु पुण्यवन्तु। लोक कहइ—भगवन् अभिनवु पाराविउ जिनदत्तु न पराविउ।

टीकात्मक गद्य का दूसरा रूप है टव्वा। टव्बा बालावबोध मे बहुत संक्षिप्त होता है! इसमे व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग नही किया जाता न प्रासंगिक कथाएँ ही दी जाती हैं। इसमे केवल मूल शब्द का अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व मे दिया जाता है। संवेगदेव (चौशरण टव्वा), सोम-विमल सूरि (कल्पसूत्र टव्वा) शिवविधान (योगशास्त्र टव्वा, कल्पसूत्र टव्वा) आदि उल्लेखनीय टव्वाकार हुए हैं। गीता, पुराण आदि पर भी जैनेतर विद्वानो ने कई टीकाएँ लिखी।

अमौलिक गद्य साहित्य का दूसरा प्रकार है अनुवाद। यह अनुवाद संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी आदि भाषाओ के ग्रंथो का राजस्थानी गद्य मे किया गया। जैन विद्वानो ने संस्कृत प्राकृत मे लिखे गये प्रश्नोत्तर ग्रंथो के अनुवाद राजस्थानी मे प्रस्तुत किये। क्षमाविजय का 'विशेष शतक' संस्कृत से राजस्थानी मे अनुवादित इसी प्रकार का ग्रंथ है। पौराणिक गद्य साहित्य की दृष्टि से पुराण, धर्मशास्त्र, माहात्म्य ग्रंथ आदि के अनुवाद मिलते हैं। गरुड़पुराण के ८ अनुवाद मिलते हैं, जिनमे तीन अनुवाद तो लक्ष्मीधर व्यास (सं० १८७७), श्री कृष्ण व्यास (सं० १८८६) और श्री हीरालाल रताणी (सं १६१३) के हैं! चौथे अनुवाद का लेखन समय सं० १६१४ है। शेष ४ अनुवादो के न तो लेखको का पता चलता है न लेखन-समय का। धर्मशास्त्र विषयक दो अनुवाद मिलते हैं 'कर्म विपाक' और 'प्रतिष्ठानुक्रमणिका'। माहात्म्य ग्रंथो मे एकादशी माहात्म्य का अनुवाद मिलता है। वैज्ञानिक ग्रंथो मे श्रीधर नामक ज्योतिषाचार्य ने संस्कृत ग्रंथ 'गणितसार' का राजस्थानी मे अनुवाद किया। वैद्यक और योगशास्त्र सम्बन्धी ग्रथो के भी कई अनुवाद मिलते है। इन अनुवादो मे धार्मिक दृष्टि की ही प्रधानता रही है।

अब तक हमने राजस्थानी गद्य के जिन विभिन्न रूपो और शैलियो की चर्चा की है उनका सम्बन्ध अब (आधुनिक युग मे) छूटता जा रहा है। राजस्थान जब अंग्रेजो के शासनाधीन हुआ तब न्यायालय की भाषा उर्दू और शिक्षा की भाषा हिन्दी बना दी गई। फलस्वरूप राजस्थानी भाषा के लिए कोई व्यापक क्षेत्र नही रहा। स्वतंत्रता के बाद जब प्रादेशिक भाषाओ को संवैधानिक मान्यता दी गई तो राजस्थानी उस अधिकार से भी वंचित कर दी गई और उसका सम्बन्ध हिन्दी के साथ हीं जोड दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता के बाद अन्य प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य की तरह राजस्थानी साहित्य का तीव्रगामी विकास और मौलिक सृजन नही हुआ।

यो तो जब मे ब्रजभाषा को अपदस्थ कर खड़ी बोली साहित्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुई तब मे हिन्दी साहित्य मे गद्य और पद्य की कई विविध नई शैलियाँ विकसित हुई। राजस्थानी साहित्य भी उनसे अप्रभावित नही रहा। अर्वाचीन राजस्थानी गद्य में प्राचीन गद्य की उपर्युक्त वर्णित शैलियाँ आज अस्तित्व में नही है, पर हिन्दी गद्य मे प्रचलित नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास, रेखा-चित्र, संस्मरण, निबन्ध आदि के विभिन्न रूप नये वातावरण और नूतन लक्ष्य-बिन्दु को लेकर अवतरित हुए हैं। उनका स्वर अब सामन्त युगीन प्रशस्तिमूलक और रूढिगत न होकर जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना से अनुप्राणित और यथार्थमूलक] है। इन शैलियो मे कृतिकार के व्यक्तित्व का लोप नही, उसकी विशिष्टताओ का किंचित उभार भी दृष्टिगत होता है। भाषा में रूढिबद्धता, सामासिकता और सामूहिकता के स्थान पर सारल्य, लालित्य, नई अर्थवत्ता, लाक्षणिक शक्तिमता और वैयक्तिक स्पर्श के संदर्शन होते हैं। पर कुल मिलकर नई शैलियो मे लिखित राजस्थानी गद्य साहित्य के नीम की निबौरी अभी हरी है, वह धीरे धीरे पक रही है, उसे नवीन अनुभूति, गहरी संवेदना और आत्म-निष्ठा की धूप अपेक्षित है, तभी उसका रंग पीला पड़ेगा और मिठास की परख होगी।

राजस्थानी वात साहित्य : एक पर्यालोचन

राजस्थानी कलात्मक गद्य मे वात साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह वात साहित्य ऐतिहासिक गद्य की वातो से किंचित भिन्न है। इसमे कथा तत्व की प्रधानता है जबकि उसमें इतिहास तत्व की प्रमुखता। यह वात साहित्य सामान्यत: प्राचीन कथा साहित्य का पर्यायवाची है। राजस्थानी मे कहानी को वात, वारर्ता आदि नामो से पुकारा जाता है। यो 'वात' शब्द संस्कृत 'वार्ता' से ही व्युत्पन्न प्रतीत होता है। इन वातो मे राजस्थान का धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, सास्कृतिक और सामाजिक जन-जीवन अपने यथार्थ रूप मे उद्घाटित हुआ है।

सामान्य परिचय :

सृष्टि के साथ साथ कहानी की सृष्टि हुई। आदि मानव ने अपनी स्पष्ट-अस्पष्ट, मधुर-कटु अनुभूतियो को स्फुट-अस्फुट स्वरो मे व्यक्त किया। आरंभ मे यह अनुभूति सीधी और सरल थी। उसमे कला का पुट न था पर कहने और सुनने के कारण एक चित्रमयता अवश्य थी। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इस कथन-प्रणाली मे कई परिवर्तन आये। चित्रममता कम हुई। छापेखाने के आविष्कार ने उसे पठन-पाठन की वस्तु बना दिया। संक्षेप मे छापेखाने के आविष्कार मे इस कहानी-साहित्य पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(१) कहानी में जिस कथनीय गुण की प्रधानता थी, वह अब न रही। अब कहानी कथनीय से पठनीय वन गई।

(२) कहानी मे श्रोता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित और आत्म विभोर करने की जो क्षमता की वह अब न रही। लिपिबद्ध होकर मुद्रित हो जाने मे वह परोक्ष पाठक की वस्तु वन गई।

(३) कहानी में भाषा की जो सहजता और सरलता थी, देश-काल के अनुसार रूप परिवर्तित करने की जो क्षमता और सुविधा थी, मुद्रित होकर रूपगत स्थायित्व प्राप्त करने के कारण वह गतिशीलता अब न रही।

(४) परम्परा से प्राप्त जो कहानियाँ, वृद्ध और अनुभवी कथावाचको द्वारा लम्बी-लम्बी रातो तक सुनाई जाती थी, वे अब लुप्त होने से बच गईं।

छापेखाने के द्वारा उनकी रूपगत एवं शैलीगत विशिष्टता सुरक्षित रह सकी।

(५) स्थूल रूप से छापेखाने ने कहानी की मौखिक परम्परा की कमर तोड़ कर उसे जन-जीवन से दूर ला पटका पर सूक्ष्म रूप मे कहानी और सर्व-सुलभ तथा अमिट बनकर सामान्य जन के हितो को सम्पादित करने में अधिक सक्षम बन सकी ।

इतना होते हुए भी आज व्रात साहित्य का मौखिक रूप अधिक वैविध्य सम्पन्न, विस्तृत और विशृंखल है। आवश्यकता इस बात की है कि इस अनन्त विस्तार और अतल गहराई वाले व्रात-वारिधि को लिपिबद्ध कर, मुद्रित कर, अमर्यादित (नष्ट) होने से बचाया जाय।

आज राजस्थान मे ये प्राचीन कहानियाँ तीन रूपो मे प्रचलित हैं। (१) राजघरानो मे पहले वाली कथाएँ (२) धार्मिक दृष्टान्त रूप कथाएँ और (३) जनसाधारण मे प्रचलित लोक कथाएँ। राजघरानो मे पलने वाली कथाएँ रक्तरंजित युद्धस्थल, विलासपूर्ण रंगमहल, राज रानियो के हास-परिहास, राजपुरुषो के षडयन्त्र, और कोलाहलपूर्ण सामन्ती वातावरण से सम्बन्धित है। धार्मिक दृष्टान्त रूप कथाएँ आचार शुद्धि, सदाचार-पालन, कषाय-त्याग, ब्रह्मचर्य-पालन, व्रत-माहात्म्य, सत्य की विजय, धार्मिक दृढता, सेवा-भाव, कर्त्तव्य परायणता, नाम-स्मरण, इष्ट-पूजा आदि से सम्बन्ध रखती हैं। जन साधारण मे प्रचलित लोक कथाएँ लोक देवताओ के अलौकिक कार्यो और जीवन घटनाओ तथा नीतिपरक उपदेशो को अपने मे समेटे हुए है।

कथानक सम्बन्धी विशेषताएँ :

प्राचीन राजस्थानी कहानियो मे कथानक की प्रधानता है। संक्षेप मे इस कथानक की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

(१) विषय की विविधता :

यो तो मोटे तौर पर सम्बन्ध की दृष्टि से इन कहानियो को दो भागो मे बांटा जा सकता है—(१) घर बीती और (२) पर बीती। घर बीती कहानियाँ सामाजिक होती हैं। इनमें कल्पना तत्व की प्रधानता रहती है। शृंगारिक अनुभूति, वीरत्व-व्यंजना, व्रत-महिमा, सामाजिक रीति-विधि, पारिवारिक स्थिति का चित्रण आदि इनके विषय होते है। परबीती कहानियाँ ऐतिहासिक या पौराणिक होती है। इनमे किसी प्रमुख ऐतिहासिक या पौराणिक

पात्र के कार्यों व जीवन-घटनाओं का विवरण रहता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि राजस्थान की ये कहानियाँ विषय की दृष्टि से विविधता और जीवन की दृष्टि से अनेकरूपता लिये हुए होती हैं। इनमें एक ओर स्वदेश-प्रेम, जाति-प्रेम, गोरक्षा, आत्माभिमान, सतीत्व-रक्षा और धर्म-पालन के लिए प्राणोत्सर्ग कर देने वाले कथानक मिलते हैं तो दूसरी ओर प्रेम और विवाह के, विरह और मिलन के, सौतिया-डाह और हास-परिहास के रंगीन चित्र भी दिखाई देते हैं। यदि एक ओर अपने पुरुषार्थ के बल पर लड़ने वाले वीर सैनानी सिंहनाद करते हुए पाये जाते हैं तो दूसरी ओर भाग्यवाद पर आस्था रखने वाले विलासी नायक रंगरेलियाँ करते हुए भी दृष्टिगत होते हैं। कहीं स्त्री अपने चातुर्य बल पर पुरुष को वशवर्ती बनाये हुए है तो कहीं पुरुष अपने पराक्रम के बल पर स्त्री को बन्धन मुक्त किये हुए हैं, कहीं चोर डाकुओं का साहस रोंगटे खड़े कर देता है तो कहीं ऋषि मुनियों का जादू रहस्य-लोक में पहुँचा देता है। जीवन और जगत का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जो इन कहानियों द्वारा अस्पर्श्य रहा हो।

(२) गठन का औपन्यासिक विस्तार :

इन कहानियों का कथा-संगठन विस्तार में उपन्यास से होड़ लेता प्रतीत होता है। कहानी कहने वाला 'अर्जुन' केवल मात्र चिड़ियाँ की 'आँख' या सिर नहीं देखता वरन् वह चिड़ियाँ के साथ साथ उसके आस पास के सम्पूर्ण वातावरण—भौतिक और मानसिक दोनों—को भी चित्रित करता चलता है।

यों तो इन कहानियों का कथानक सरल होता है, वक्र नहीं। पर सरलता के साथ-साथ उसमें विस्तार अधिक होता है। वह प्रमुख कथा के साथ अपने में कई प्रासंगिक कथाएँ समेटे हुए चलता है। कथा के फूल में उपकथाओं की पंखुड़ियां निकलती चलती हैं। ये उपकथाएँ अपने में इतनी सम्पूर्ण होती हैं कि अलग कथा सी जान पड़ती हैं फिर भी प्रमुख कथा और उसके उद्देश्य के साथ इनका अन्तरंग मेल होता है। 'राणी चौबोली री बात' इसका उदाहरण है। इसमें राजा भोज और चौबोली की प्रमुख कथा के साथ उसे सम्पूर्णता प्रदान करने एवं लक्ष्य की पूर्ति के लिए चार प्रासंगिक कथाएँ चलती हैं जिनका सम्बन्ध श्रोता और निर्णायक के रूप में नायक भोज के चारों मित्रों—आगिया, वेताल, कबडिया जुआरी, माणिकदे मदवाण, खापरा चोर—से जोड़ा गया है। इन चारों मित्रों के निर्णय सामान्य लोक नीति और लोक धर्म से इतने विपरीत और विरुद्ध होते हैं कि चौबोली को बोल कर उनका प्रतिकार करना पड़ता है।

इन कहानियों का कथानक स्थूल होता है, सूक्ष्म नहीं। इसी स्थूल कथानक

के कारण कहानियो मे घटना बाहुल्य तो है पर मानसिक संघर्ष नही। इन कहानियो मे आधुनिक कहानी की भाँति जीवन का कोई एक विशिष्ट पक्ष उद्घाटित नही किया जाता वरन् आधुनिक उपन्यास की भाँति जीवन को संपूर्ण संदर्भो मे देखने का प्रयत्न किया जाता है।

जीवन को सम्पूर्ण संदर्भों में देखने का ही यह परिणाम है कि इन कहानियो में देश-काल की भूमि अत्यन्त व्यापक है। इन कहानियो को पढकर मध्यकालीन राजस्थानी समाज का व्यापक चित्रपट तैयार किया जा सकता है। तत्कालीन शासन पद्धति, राजपुरुषो की मनोवृत्ति, अन्तर्कलह, सामन्ती षड्यन्त्र, प्रेम के पचड़े, उत्तराधिकार नियम, सोतिया डाह, जागीर प्रथा, बहु विवाह के परिणाम, भोजन विधि, खान-पान, रहन-सहन, देवी-देवता, लोक विश्वास, शिक्षण पद्धति, व्यवसाय, नगर की विशालता, दुर्ग की अभेद्यता, युद्ध की भयंकरता, वीरो का रण-चातुर्य, शस्त्रो की बौछार, नायिका की रूप-सज्जा, प्राकृतिक दृश्यो की छटा, आमोद-प्रमोद के साधन आदि सबका विवरण स्थान-स्थान पर कथाकार देता चलता है। इन वर्णनो द्वारा वह प्रत्यक्ष श्रोता को प्रभावित करने मे सफल भी होता है।

कहना न होगा कि घटना बाहुल्य, अन्तर्कथात्मक शैली और देशकाल की व्यापक पृष्ठभूमि के कारण ही इन कहानियो का कथा-संगठन औपन्यासिक वस्तुसंगठन मे मेल खाता हुआ प्रतीत होता है।

(२) विकास का महाकाव्योचित उठान :

यद्यपि ये सभी कहानियाँ विस्तार में अधिक लम्बी नही होती तथापि कथा-विकास की अवस्थाओ को देखते हुए इनमें वे सभी मोड मिल जाते है जो किसी नाटक या महाकाव्य के लिए अपेक्षित होते है। सुविधा की दृष्टि से विकास की इन दशाओ को तीन भागों मे बाटा जा सकता है। (१) आरंभ (२) मध्य और (३) अन्त ।

इन कहानियो का आरंभ साधारण ढंग से होता है। उसमे नाटकीय चमत्कार के लिए कोई स्थान नही। यह अवश्य है कि आरंभ की इति-वृत्तात्मकता कहानी मे शिथिलता ला देती है पर उसे शुष्क नही बनाती। वार्त्ताकार कथा का आरभ यकायक नही कर देता। इसके लिए वह भूमिका बांधता है। यह भूमिका कभी तो सामान्य और छोटी होती है पर कभी विशिष्ट और विस्तृत। इस भूमिका मे साधारणतः तीन बातो मे मे कोई एक

बात होती है। कभी तो बाह्य स्थिति का विस्तार मे परिचय दिया जाता है, कभी मानसिक वातावरण को विचित्र किया जाता है और कभी बात की महत्ता के संबंध में ही कतिपय प्रशंसात्मक छन्द दुहरा दिये जाते हैं।

बाह्य स्थिति के चित्रण मे उस देश की भौगोलिक और सांस्कृतिक विशेषताओ का उल्लेख किया जाता है जिसका संबंध कहानी से होता है। 'डाढालौ सूर' मे कहानी का आरम्भ 'अबू के माहात्म्य' के साथ होता है।

"जम्बू दीप भरतखंड मे अढार गिर, पण अढार गिरारो सिरौ अरबद किसौहेक छै—

बनस्पती पाखर बणी, वणिया टोक विहद्द।
पटा विछूता नीझरण, आयौ मद अरबद्द॥
घेघू बीन्नू बीघटा, सिखर पखिया सद्द।
लग सूं सूवा वालिया, आजूणो अरबद्द॥
चंपा माणै नर चढै, अंबा भखै अवल्ल।
अरबाद सूं अलगा रहै, ज्यारा कूण हवल्ल॥
आबू गढ़ रा खेतडा, केतकिया री वाड़॥
अन देसी अजस करै, सीस पागडी चाढ॥
जाणै जिके मुजाण नर, ना जाणै सौ बोक।
जमी र असमाना बिचै, अरबद तीजो लोक॥

जिण अरबद ऊपर अढारह भार बनस्पती झुक रही छै। घणो ही चंपो, चमेलो, मोगरो, जुही फूल रहिया छै। फेर अडसठ तीरथ आय विसराम लियो छै। श्री अचलेसरजी रै दरसण करण रै पगा फेर अठ्यासी रिसी, नवनाथ, चौरासी सिद्ध, निन्याणवे किरोड़ राजा, सिद्ध, तैती किरोड देवता मेले भरे। इसौ अरबद छै। मृत्युलोक माही सरग छै।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि कथा कहने वाला वातावरण को मुखरित करना चाहता है। इसके लिए वह गद्य और पद्य दोनो का सहारा लेता है। दोनो के भावो मे पुनरावृत्ति होती है, पर वह क्षम्य है, रोचकता मे उससे किसी प्रकार की कमी नही आती।

'राणी चौबोली रो वात' में कथा का प्रारम्भ उज्जैन नगरी परिचय मे होता है।

"उजेणी नगरी राजा भोज राज्य करै। नव वारी नगरी। चौरासी चौहटा, छतीस पोली। च्यार वरण रहै। छतीस पवन जाति लोक बसै। कोडी-धज व्यापारी रहै। षट दरसणी रहै। तिण नगरी रै विषै राजा भोज राज्य करै।"

कभी-कभी कहानी का आरम्भ वातावरण मे न होकर सीधा पात्र-परिचय मे होता है। 'खीवै वीजैरी वात' का आरम्भ इसी प्रकार का है—"खीवो। विजो धाडवी वडा दोडा वड़ा चोर। बिजो सोभित वसै। खीवो नाडौल वसै। वैहूं रा ओसाप वडा।"

कथा कहने वाला कभी कथा-स्थल पर जल्दी पहुँच जाता है तब वह कथा का मूल अंश प्रारंभ न कर कथा के महत्व के सम्बन्ध मे कतिपय छंद कहने लगता है ताकि अन्य लोग भी कथा सुनने के लिए इस बीच अपने काम से निवृत्त होकर आ सकें। वात की प्रशंसा में कहे जाने वाले कुछ पद्य ये है—

"बात भली दिन पाधरा, पैंडे पाकी बोर॥
घर भीडल घोड़ा जणै, लाडू मारै चोर॥"

+ + +

"कोई नर सूता, कोई नर जागै।
सूतोडां री पागड़िया, जागता ले भागै॥"

+ + +

"सार बाबा सार, माता सा घोड़ला।
दूजला सा टार।"

+ + +

"बातां हंदा मामला, दरियां हन्दा फेर।
नदियां बहै उतावली, फिर फिर घालै घेर॥"

+ + +

"बात मे हुँकारो, फौज में नगारो।
जीवै बात रो कहणवाल, जीवै हुंकारा रो देणवाल॥"

इसके बाद फिर मूल कहानी आरम्भ होती है—

"उज्जीण नगरी रै माही देवसरमा नामे बिरामण निवास करै,' आदि-आदि' (साईरी पलक मे खलक)

'आरम्भ' मे कथा के प्रमुख पात्र, उसका उद्देश्य आदि स्पष्ट हो जाता है। "राणी चौबोली री बात" के आरम्भ मे ही यह संकेत मिल जाता है कि राजा भोज चौबोली से विवाह करने के लिए प्रयत्नशील है। "बीमाह करो तो चौबोली परणी जिस्यौ। ज्यु हुई जाणु सोक आई।" और इसी प्रयत्नावस्था से कहानी आगे बढती है। राजा भोज अकेला ही घोड़े पर सवार होकर चौबोली की खोज मे निकलता है। यही से संघर्ष प्रारम्भ होता है। वह एक पहाड़ी प्रदेश मे पहुच जाता है जहा एक राक्षस राक्षसी के घुटने पर मस्तक रखे सोया हुआ है। वहा राक्षसी उसे स्वर्ण मक्खी बना कर अपनी जटा मे रख लेती है। "राकसणी सोवन माखी राजा नु करि नै जटा माहे राखीयौ।" यह प्रथम संघर्ष बिन्दु है। किसी तरह अपने मित्रो को स्मरण कर राजा उनकी सहायता से राक्षसी को मूच्छित कर, इस संघर्ष बिन्दु से पार होता है। इसके बाद संघर्ष का दूसरा बिन्दु आरम्भ होता है। चौबोली यदि रात मे किसी के द्वारा न बुलवाई जा सके तो उसे प्रभात होने पर वहा नौकर की तरह पानी भरना पडता है। मालिन से सारा भेद और विवरण लेकर राजा भोज अपने मित्रो (जिन्होने अदृश्य मक्खी रूप धारण कर लिया है) सहित चौबोली के महल पहुँचते हैं और सामान्य लोक धर्म विरुद्ध बातें (कहानिया) कह कर चौबोली को बोलने के लिए विवश कर देते है। चौबोली के बोलते ही सघर्ष समाप्त हो जाता है और दोनो के विवाह के साथ कहानी का अन्त हो जाता है।

'चौबोली' कहानी की इस विकास-दशा मे यह स्पष्ट है कि यहाँ कहानी के 'मध्य' मे संघर्ष तो होता है पर यह संघर्ष सूक्ष्म और आन्तरिक नही होता, स्थूल और बाह्य होता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि यहाँ मानव का भौतिक जगत—मार्ग मे आने वाली प्राकृतिक बाधाएँ—स या मानव का मानव से—राक्षस, प्रतिपक्षी आदि—संघर्ष होता है। मानव का अपने आप से, अपनी ही वृत्तियो से संघर्ष छिडता हुआ यहाँ नजर नही आता। एक ही हृदय मे दो भावो का, दो वृत्तियो का, आन्तरिक या मानसिक संघर्ष नही उमडता। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि यहाँ बहिर्द्वन्द्व तो है पर अन्तर्द्वन्द्व नही। राजा भोज–चाहे मित्रो की सहायता से ही सही–राक्षस–राक्षसी से लडता है, चौबोली को बोलने के लिए विवश भी करता है पर उसके अन्तर्भावो का कोई पता यहाँ नही लगता। यही बात राक्षसी और चौबोली जैसी (कुंठित मनोवृत्तियो वाली) नायिकाओ के बारे में कही जा सकती है।

इन बाह्य संघर्ष–बिन्दुओ को पार करती हुई ये राजस्थानी कहानियां 'अन्त' की ओर बढती है। इनका अन्त सुखमय होता है। दुखात्मक अन्त को लेकर कही गई कहानियाँ यहाँ नही मिलती। भारतीय आदर्शवाद और

मंगलमयी भावनाओं के आलोक से ये कहानियाँ विमंडित है। नायक संघर्षों मे डूबता–इतराता लक्ष्य को पा ही लेता है। 'राणी चौबोली री बात' मे राजा भोज चौबोली से विवाह कर ही लेता है। 'बात सूरा अर सतवादी री' में कुंवर मार दिया जाता है, फूलमती धोखे से, नाइन द्वारा काबुल के राजा के यहाँ पहुँचादी जाती है फिर भी वह अपने शील की रक्षा करती हुई अन्त मे कुंवर के मित्रो की सहायता से काबुल के राजा के यहाँ से मुक्त ही नही होती वरन् कुंवर को जीवित बना, आनन्द रस का भोग भी भोगती है। 'पंचमार री बात' का नायक अशक्त, मूर्ख और निरा भाग्यवादी है फिर भी सयोग–बिन्दुओ के मिलन से 'सात मार,' 'सिहमार' 'फौजमार' आदि का वैशिष्ट्य अर्जित कर, अपार धन सम्पत्ति–राज्य तक-प्राप्त कर लेता है। 'ढोला मारू री बात' मे नायिका मारवण, पीवणा साप द्वारा उसकी साँस पी जाने के कारण मर जाती है और ढोला भी उसके साथ जल मरने को उद्यत होता है तभी शिव–पार्वती उपस्थित होकर मारवण को जीवित कर कहानी को दुखान्त होने से बचा लेते हैं। ठीक यही स्थिति 'जलाल–बूबना री बात' मे है। जलाल की मृत्यु के झूठे समाचार सुनकर बूबना मर जाती है, उधर बूबना को मरा हुआ जान जलाल सास छोड़ देता है। पर शीघ्र ही शिव–पार्वती आकर दोनो–प्रेमी-प्रेमिका–को जीवित बना देते है और कथा सुखान्त बन जाती है। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि इन कहानियो को अलौकिक तत्वो का बल देकर भी सुखान्त बनाने का प्रयास किया गया है।

(४) अतिमानवीय तत्वों की प्रधानता :

राजस्थानी कहानियो मे अतिमानवीय तत्त्व पद पद पर देखने को मिलते हैं। ये अतिमानवीय तत्त्व मुख्य रूप से दो कार्य सम्पादित करते है। (१) कथा की गति को आगे बढाने मे सहायक होते हैं और (२) कहानी की वस्तु को–संघर्ष–बिन्दुओ से निकाल कर, असंभाव्य घटनाओ को संभव बनाते हुए-सुख पूर्ण अन्त की ओर अभिमुख करते है। इन अति मानवीय तत्त्वो के कई रूप हैं। रूप-परिवर्त्तन, गुण परिवर्त्तन, आकाशवाणी अप्सरा तत्त्व इनमे प्रमुख हैं। रूप-परिवर्त्तन सबसे व्यापक तत्त्व है। इसमे जड़ का चेतन, पक्षी का मनुष्य, मनुष्य का पक्षी होना तो सामान्यतः देखा ही जाता है पर वेश और लिंग परिवर्त्तन भी इसका साधारण अंग है। 'चौबोली' की प्रासगिक कथा मे ब्राह्मण पत्थर की पुतली मे, अपने विद्या के बल से, प्राणो की प्रतिष्ठा करता है। राजा भोज स्वर्णमाखी बन कर राक्षसी की जटा मे रहता है और अपने चारो मित्रो को मक्खी बनाकर चौबोली के महल मे प्रवेश करता है। राजकुमारी किसी सिद्ध से कह कर एक ऐसी रखैनी बनवाती है जिसके बाधने से मूर्ख

(रतनपारखी) पक्षी (सुग्रा) बन जाता है और ज्यो ही पंचकली द्वारा वह रखैनी छुडाई जाती है मूर्ख मनुष्य बन जाता है।

जड़ पदार्थों मे भी इतना अद्भुत वैशिष्ट्य पाया जाता है कि हम दातो तले अंगुली दबाने लगते हैं। 'राजा मानधाता री बात' मे मानधाता ज्योही मामा अजयपाल द्वारा संकेतित लकड़ी के हाथ लगाता है त्यो ही वह लकड़ी उसे लेकर उड चलती है और पहुँचा देती है सात समुद्रो पार। खड़ाऊ को स्पर्श करने पर खडाऊ भी उसे ले उडती है और सुमेरू पर्वत पर ला उतारती है। गुण-परिवर्तन के भी कई उदाहरण मिलते हैं। मूर्ख व्यक्ति शारदा से प्राप्त खाक फाक कर त्रिकालदर्शी बन जाता है। मृत व्यक्ति को जीवित बना देना तो साधारण बात है। 'चौबोली' की प्रासंगिक कथा मे तान्त्रिक के चेले के पास जो लकडी है, उसका स्पर्श पाते ही मुर्दा जी उठता है। 'सूरा अर सतवादी री बात' मे फूलमती के मृत पति को उसका ब्राह्मण-मित्र जीवित बना देता है। शिव और पार्वती के प्रसंग से तो न जाने कितने प्रमुख चरित्र इन कहानियो मे जीवन-दान लेते रहते हैं।

इन अतिमानवीय तत्वो मे सिद्ध महात्माओ और अप्सराओ का भी बडा हाथ रहता है। ये सिद्ध महात्मा पहुँचे हुए साधु होते है। इनके अभिमन्त्रित जल का सेवन करने से निस्सन्तान के भी सन्तान हो जाती है। 'मानधाता री बात' मे तो राजा युवनाश्वर के भी गर्भ रह जाता है। 'राजा सिद्धराव जैसिंव री बात' मे यति हेमाचार्य अपने मन्त्र बल से कुमारपाल को नगर के बाहर निकाल देता है, योगिनियो को आदेश देकर बादशाह को सपलंग उठा मंगवाता है। शेख फरीद का व्यक्तित्व भी अतिमानवीय है। उसका सोटा इतना भारी है कि उसे ५० आदमी मिलकर भी नही उठा सके। वह काले क्षेत्रपाल, गोरे क्षेत्रपाल और गणेशजी की मूर्तियो को सचल बनाकर उनसे पानी तक मंगवाता है।

अप्सराओ का लोक भी बड़ा विचित्र है। इनका धरती से सम्बन्ध जोड़ा गया है। 'मानधाता री बात' मे मानधाता अप्सराओं से घिरा हुआ है। उनके मना करने पर भी वह कमरे खोलता है फलस्वरूप मोरपंख, गरूड़, घोडे और गधे पर बैठकर वह विभिन्न लोको की यात्रा कर आता है पर अन्ततः गधा उसे मामा के पास ला छोडता है और वह भी मामा की भांति ही निःश्वास छोड़ने लगता है। 'लालमणि कंवर री बात' का सारा वातावरण ही अप्सरा तत्व से घिरा हुआ है। 'डाढाली सूर' जैसी वीर भावो की प्रतीक कहानी मे भी अन्ततः अलकापुरी से विमान आ उतरता है।

ये अति मानवीय तत्व कथा को यथार्थ की भूमि से ऊपर उठाकर किसी

आदर्श लोक मे ला पटकते हैं। इनमे अभिशाप आदि की अवतारणा भी की गई है पर वे यथार्थ को बल न देकर किसी न किसी आदर्श की ही संपुष्टि करते हैं।

(५) कथानक रूढ़ियों की संयोजना :

अति मानवीय तत्वो की प्रधानता और कथा का सुखान्त भाव विभिन्न कथानक रूढियो को अपनाने के लिए विवश हुआ है। इन रूढ़ियो के आधार पर ही पूरी की पूरी कथा अपना आकार ग्रहण करती है। ये रूढिया परम्परागत हैं जिनका प्रयोग मध्यकालीन काव्यो मे प्रचुरता के साथ मिलता है। यहां इन कहानियो में प्रयुक्त प्रमुख कथानक रूढियो के नमूने दिए जाते है :—

(१) निस्सन्तान होने के कारण राजा का चिन्तित रहना और पुत्र प्राप्ति के लिए ऋपीश्वरो की सेवा करना।

(२) ऋपीश्वरो का प्रसन्न होकर अभिमंत्रित जल देना, जिसके सेवन करने से गर्भ रहना और यथासमय पुत्ररत्न की प्राप्ति होना (मानधाता री बात)

(३) छोटी रानी को अपने वश मे कर बड़े लडके के विरुद्ध राजा के कान भरना और उसे देश-निकाला देना।

(४) कुंवर का अपने मित्रो के साथ जंगल की ओर रवाना होना।

(५) आगे चलकर मित्रो को बीच ही मे छोड अकेले घोडे पर चढ़कर पहाड की ओर बढना।

(६) पहाड की गुफा मे निर्जन शहर का होना, उसमे राक्षस के बीच किसी राजकुमारी का मिलना।

(७) राजकुमारी का कुंवर (राजकुमार) की ओर आकर्षित होना, राक्षस का वध कर राजकुमारी को भय-मुक्त करना व विवाह करना (सूरा अर सतवादी री बात)

(८) राजकुमारी के जूतो की जोडी रत्नजटित होना, उसमे से एक जूती का नदी मे गिरना, मगरमच्छ द्वारा उसका निगला जाना, मगरमच्छ के शिकार करने पर उसके पेट मे से जूती का निकालना, उस पर किसी दूसरे राजा का मुग्ध होकर राजकुमारी को प्राप्त करने का डिंडोरा पिटवाना।

(९) कार्य सिद्ध करने वालो को बहुत अधिक पुरस्कार देना, सामान्यतः आधा राज्य देकर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना।

(१०) नायन या किसी दूती द्वारा भी इस कार्य को सिद्ध करने का प्रदत्त

करना। इस प्रयत्न मे राजकुमारी को धोखे से फंसाना, उसके साथ मौसी का सम्बन्ध जोड़ना और राजकुमार को विष-मिश्रित भोजन देकर मार डालना।

(११) राजकुमारी का अपना सतीत्व निभाना। पर पुरुष के यहां जाकर भी सामान्यतः एक वर्ष की अवधि तक अपने प्रिय की प्रतीक्षा मे अलग महल बनाकर एकान्त वास करना।

(१२) इस अवधि मे सदाव्रत बांटना, पक्षियो को चुग्गा खिलाना और इसी माध्यम से प्रियतम या उसके किसी अन्तरंग मित्र मे भेंट होना।

(१३) इस भेंट के द्वारा सारे रहस्यो का खुलना, राजकुमारी का चुपके से अपने प्रियतम या किमी अन्य सम्बद्ध व्यक्ति के साथ निकल भागना।

(१४) सम्बद्ध व्यक्ति का चमत्कारी होना, मृत व्यक्ति को जीवित करना और आनन्द मनाना।

(१५) राजकुमार-राजकुमारी का पूर्ण वैभव औ आडम्बर के साथ फिर अपने घर जाकर माता-पिता मे मिलना और सर्वत्र सुख शान्ति की वर्षा होना (सूरा अर सतवादी री वात)

ऊपर हमने जिन कथानक रूढियो का उल्लेख किया वे सामान्यत: सूरां अर सतवादी री वात के आधार पर। इनके अलावा भी कई कथानक रूढ़िया प्रचलित हैं।

(६) काव्य-निर्णय (Poetic Justice)

अति मानवीय तत्वो के निर्वाह, कथानक रूढ़ियो के संयोजन और सुखान्त भावना के कारण इन कहानियो मे काव्य-निर्णय का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। यहा जितने भी दुष्ट मात्र हैं, उनको उनकी दुष्टता का पूरा पूरा फल मिलता है और जितने भी सद् पात्र हैं वे अपनी सद्भावना का पुरस्कार पाते हैं। 'सूरा अर सतवादी री वात' मे नायन को उसकी दुष्टता का फल मिलता है। उसे आकाश में उडते हुए खटोने से राजा के दरबार मे, जहां उसका पति चंवर डुला रहा था, 'करे सो पावे' कहकर पटक दिया जाता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। 'राजा सिद्धराव जैसिंघ री वात' में कुमारपाल राजा होने पर पाटन के चौधरी को मरवा डालता है और बनियो को देश निकाला दे देता है।

(७) प्रभावान्विति :

कहानियो की दो मूल विशेषताएं होती हैं। (१) विषय का एकत्व और (२) प्रभावान्विति। राजस्थानी कहानियो में कथानक औपन्यासिक विस्तार

लिए हुए रहते हैं। उनमें 'कथा के अन्दर कथा' और देश काल की व्यापक भूमि होने के कारण विषय की एकता का तो अभाव है पर प्रभाव-समष्टि का निर्वाह अवश्य देखने को मिलता है। 'चौबोली' कहानी मे चार कथाएँ चलती हैं पर जब कहानी का अन्त होता है तब कहानी का लक्ष्य—राजा भोज का चौबोली से विवाह-पूरा हो जाता है। रानी को बुलवाने के लिए ही ये चार कथाएँ गड़ी गई हैं। यही बात 'राजा मानधाता' की कहानी के संबंध में कही जा सकती है। राजा अजयपाल निश्वास क्यो छोडता है, इस रहस्य का पता लगाने के लिए ही मानधाता अप्सराओ के लोक मे पहुँचता है और एक-एक कर चार कमरो को खोलता है, विभिन्न यात्राएँ करता है और अन्ततोगत्वा गधे पर बैठ कर मामा के पास आ पहुँचता है और उसी प्रकार निश्वास छोड़ने लगता है। कहानी पढ़ने या सुनने के बाद पाठक अथवा श्रोता के मन मे कोई कौतूहल या जिज्ञासा का भाव नही रहता। सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। उपन्यास की भाँति पूर्णता वधायक संतुष्टि उत्पन्न करने मे ये कहानियाँ अत्यन्त सफल हुई है। औत्सुक्य वृद्धि का तो यह हाल है कि 'मन लगना' इन कहानियो की कोई विशेषता नही है 'मन लगा रहना' ही इनकी विशेषता है।

पात्र और चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विशेषताएँ :

राजस्थानी कहानियाँ सामान्यतः घटना प्रधान है। यहाँ घटनाओ के आधार पर ही पात्रो का चरित्र चित्रित किया गया है। पात्र और चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विशेषताओ को निम्नलिखित रूपो मे देखा जा सकता है.—

(१) एक रस सरल गति वाले चरित्र :

इन कहानियो मे जो पात्र आये हैं वे सम चरित्र वाले है। उनके जीवन मे उत्थान-पतन के अधिक मोड़ नही हैं। वे एक निश्चित और सरल दिशा की ओर बढते हुए प्रतीत होते हैं। बढते क्या है उनको केवल मात्र विभिन्न घटनाओ और स्थितियो मे गुजरते हुए दिखाया गया है। राजा भोज का चरित्र बिल्कुल सरल और स्पष्ट है। उनमे चौबोली से विवाह करने का उत्साह तो है पर परिस्थितियो मे संघर्ष करने की हिम्मत नही। यहाँ जटिल परिस्थितियो का निर्माण भी नही किया गया है। यही कारण है कि राजा भोज का चरित्र जटिल चरित्र नही है। उसमें आन्तरिक मनोभावो का द्वन्द्व नही है। राजा मानधाता भी ऐसा ही पात्र है। वह अप्सरा-लोक मे पहुँचने पर भी निर्द्वन्द्व बना रहता है।

ये पात्र संघर्षशील हैं पर यह संघर्ष भौतिक और/बाह्य है मानसिक और

सूक्ष्म नहीं। ये सामान्यतः अपने ही समान धर्मी भाइयो मे लड़ते है। यह संघर्ष उत्तराधिकार-भावना, राज्य लिप्सा, कर्त्तव्यपालन शरणागत रक्षा, प्रेम-निर्वाह वचन-पालन आदि भावो की रक्षा के लिए होता है। इन कहानियो के राजकुमार सामान्यतः राक्षसो से लड़ते हुए पाये जाते है। इस लड़ाई में राक्षस पराजित होता है और राजकुमारी का उद्धार होता है। अपने आप से लड़ना उन्हें नही आता। यही कारण है कि सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण इन कहानियो मे नही हो पाया है।

ये पात्र आरंभ से अन्त तक समान स्थिति मे ही रहते हैं। चाहे राजा भोज हो, चाहे कुंवर वीरभान, चाहे खीवा बीजा चोर हो चाहे साहूकार, चाहे भाग्य-वादी पंचमार हो चाहे कांणा राजपूत। उनमे चरित्र का विकास नही दिखाई देता। ये सारे पात्र स्थितिशील लगते हैं। रूढ़ियो और सिद्धान्तो के जैसे पुतले हो। इन कहानियो को पढ़ कर ऐसा लगता है कि ये सारे पात्र सहज स्वभावी नही है। विशुद्ध चरित्र-चित्रण के नाम पर या तो इन्हें किसी आदर्श का पुतला बना दिया गया है या किसी सिद्धान्त विशेष की प्रतिपादना के लिए इनका निर्माण कर लिया गया है। इन पात्रो का चारित्रिक सौन्दर्य मुखरित नहीं हो सका है। घटना और परिस्थिति के साथ पात्र के चरित्र का जो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होना चाहिए, उसका न होना ही इस विसंगति का कारण है।

(२) वर्गगत विशिष्टता के सूचक पात्र :

इन कहानियो के पात्र सामान्यतया किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। मध्यकालीन राजस्थानी समाज मे जो अंधविश्वास, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र आदि का प्रभाव बढ़ रहा था, उसका प्रतिबिम्ब इन कहानियो मे मिलता है। अधिकांश कहानियां राजपूतो की वीरता, साहसशीलता और शौर्य-भावना से संबंधित हैं। यहां औसत पात्र वीर है। वह युद्ध, दान, दया और धर्म सभी ओर अपना उत्साह और ओज बिखेरे हुए है। युद्ध वीरता का वर्णन ही विशेष रूप से अभिव्यंजित हुआ है। राजपूतो की पतन अवस्था का मार्मिक चित्र भी इन कहानियों में मिलता है। कुंवर वीरभान वीर-भावना का प्रतीक है। वीरता के साथ साथ प्रेम-भावना का भी स्फुरण इन कहानियों में दिखाई देता है। राजा भोज का चौबोली के प्रति आकर्षण, वीरभान के कुंवर का फूलमती के साथ विवाह इसके उदाहरण हैं। 'डाढाळो सूर' में पूरा-परिवार का परिवार वीर भावनाओं का पोषक और वाहक है। ये पात्र एक ओर प्रेम में मस्त, शौर्य मे डूबे हुए, स्वामीभक्त और प्रणपालक हैं तो दूसरी ओर अशक्त, निर्धन,

साहसहीन (पंचमार री वात) दुश्चरित्र, रूप लोभी, अधिकारो के प्रति लापरवाह, भीरू (काणां राजपूत री वात) और चोर (खीवै बीजै री वात) भी हैं ।

इन कहानियो के स्त्री पात्र प्राय: बड़े चतुर, साहसशील, सतीत्व की रक्षा करने वाले और रूपवान होते हैं । 'काणा रजपूत री वात' मे सामेचा जाति के राजपूत की स्त्री-पति की अनुपस्थिति मे अपने रूप पर मुग्ध हुए नकली गृहस्वामी (एकाक्ष राजपूत), कोतवाल, प्रधान, मेहता और काजी को अपने साहस और चातुर्य के बल पर, एक ही रात मे घर आने का समय देकर, उन्हें अपने २ अफसरो से भयभीत होते देख, अलग २ मजूषो मे बन्द कर राजा के सम्मुख प्रस्तुत कर-न केवल अपन शील धर्म की रक्षा करती है वरन् अधिकारियो की दुष्चरित्रता का पर्दाफाश भी करती है । 'राजा रा गुर रा बेटा री बात' में अबला कहलाने वाली एक स्त्री द्वारा पाडित्य का भार लाद कर फिरने वाले एक गुरू के बेटे की खबर ली गई है । 'गाम राधणी री वात' मे एक सच्चरित्र राजपूत महिला, अपनी सूझबूझ के कारण मूर्ख ग्वाले को भी चतुर बना उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह तो करती ही है उसे राजा का दीवान तक बना देती है । दुष्ट स्त्रियो की भी कमी नही है

इन मानवी पात्रो के अलावा स्त्री-पात्रो की और भी श्रेणियाँ हैं । अप्सरा, पद्मिनी और राक्षसी इन श्रेणियो मे आती हैं । 'मानधाता री वात' की अप्सराएँ मानधाता के साथ भोग भोगती है, वे इन्द्र को मुजरा करने जाती हैं, वहाँ नृत्य करती हैं, मानधाता को देखकर ताल चूक जाती है । 'साहूकार ने सूआ री वात' में पद्मिनी स्त्री की चर्चा है । राजा का कुंवर सुग्गे की सहायता मे पद्मिनी स्त्री के साथ विवाह करता है । 'चौवोली' मे राक्षसी का वर्णन आता है जो राजा भोज को स्वर्णमाखी बना कर अपनी जटा मे रखती है और खापरा चोर आंखो मे कज्जल डाल कर जिसे मूर्छित करता है ।

ये पात्र उच्चकुल के भी हैं और साधारण वर्ग के भी । पर दोनो के व्यवहार और सम्बन्ध मे कोई विभाजक रेखा नही है । दूसरे शब्दो मे यहाँ का राजा अपने राजत्व मे घिरा हुआ नही है । वह समाज के सभी वर्गों से संबंधित है । राजा भोज उज्जैन का राजा है पर उसके मित्र राज वर्ग के नही हैं । वे सा मान्य स्तर के लोग हैं । उसके प्रमुख चार मित्रों में आगिया बेताल, कबडिया जुवारी, माणिक दे मदवांण और खापरा चोर हैं । राजा इन मित्रो का बड़ा सम्मान करता है । वह इनमे पन्द्रहवी विद्या सीखना चाहता है । ये मित्र

भी राजा की यथासंभव सहायता करते हैं। उनके बल पर ही [illegible] से विवाह कर पाता है। 'मूर्ख घर मतवादी री बात' का नायक राजा वीरभान का पुत्र राजकुमार है। वह भी राजसी ठाट बाट से [illegible] है। उसके जो मित्र हैं उनमे एक ब्राह्मण है, एक कुम्हार है और एक बढ़ई है। राजकुमार का इनसे घनिष्ट प्रेम है। ये उसके शरीर हैं, बुराई-भलाई के साथी हैं। जब कुंवर को वनवास दिया जाता है तब ये मित्र भी उसके साथ जाते हैं। जब कुँवर भोजन करता है तब सबसे पहले तीनों मित्रों के नाम की तीन पत्तलें पशु-पक्षियो के सामने डालता है और जब तीनों मित्र भोजन करते हैं तो कुँवर के नाम की पत्तल अलग निकालते है। इतना ही नहीं जब कुँवर मर जाता है तब उसका ब्राह्मण-मित्र ही अपनी विद्या के बल से उसे पुनर्जीवित करता है। जन साधारण के साथ उच्च पात्रों का यह सम्पर्क सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

ये पात्र सामान्य विशेषताओं के धनी है। व्यक्ति वैचित्र्यपूर्ण चरित्रांकन की यहाँ कमी है। लोक कल्याण की भावना का स्पष्ट चित्र यहाँ देखने को नही मिलता। ये पात्र अपना स्वार्थ अवश्य साधते हैं पर दूसरो का कल्याण भी करते हैं। राक्षसो के आगे प्रायः इनकी अपराजेयता प्रकट की गई है। यहाँ जितने भी प्रतिद्वन्द्वी पात्र हैं वे या तो मारे जाते हैं या नायक के आगे आत्म समर्पण कर अपने जीवन-क्रम को परिवर्तित कर लेते हैं, उसे सुधार लेते हैं।

(३) बेनाम-बे-धाम के पात्र :

राजस्थानी कहानियो के पात्र सामान्यत बिना नाम के और बिना गांव के हैं। जहाँ नाम आये भी हैं वे पौराणिक युग की याद दिलाते है। किसी भी पात्र के साथ राजा भोज, उदयन, वीरभान या खापरा चोर जोड देना साधारण बात है। जो पात्र ऐतिहासिक हैं उनके नाम सही हैं पर उनके साथ जो घटनाएँ संबद्ध की गई है वे काल्पनिक है। चौबोली कहानी मे राजा का नाम भी है और गाँव का नाम (उज्जैन) भी। रानी का नाम मानमती और चौबोली परम्परागत प्रतीत होते हैं। 'खीवे बीजै री बात' मे भी पात्रो के नाम हैं। सोभित और नाडोल स्थान भी ऐतिहासिक हैं पर कहानी मे जो चोरी का काम घटित दिखाया गया है वह कितना यथार्थ है, कहा नही जा सकता। चित्तौड़ के शाह देवीदास की घोड़ियो के 'जय' 'विजय' नाम भी परम्परागत हैं। यो तो पुरुष पात्रो में मानधाता, वीरभान, भोज, लालखान आदि नाम मिल जाते हैं पर अधिकांश पात्रो के नामकरण नही किये गये हैं यो ही कह दिया

जाता है "एक राजा कही देश रौ । तैरो नाम वीरभाण । सु श्रौ कुंवर खरच करतो दे खै क्यूं, नही । रुपीयौ कांकरौ बराबर कर खरचै । तद इयै रै तीन्ह जणा मेल्हू एक ब्राह्मण, एक लोहार एक सुथार (सूरां अर सतवादी री वात) कही कही नगरी का नाम तो उज्जैन दे दिया है पर पात्रो का नाम नही दिया है—"नगर उजीण मांहे । एक साहूकार वसे । जणी रै च्यार बेटा (साहूकार री बात) कही वृत्तान्त मे फलाणा या अमुक कह कर ही काम चला दिया जाता है—फलांणो साह देवलोक हुश्रो है । जणी रै च्यार बेटा है सो बड़ी रा है ।.... महाराजं फलाणा सैहर मांहै फलाणौ बेद रहै है । (साहूकार री बात) । साधारणतः पात्रो के नाम जातिगत या वर्णगत है—जैसे साहूकार रो बेटो, साह रो बेटो, ब्राह्मण रो बेटो, गाम रो धणी, राजा रो वेटी, कोडीधज सेठ, गुमासता रा बेटा, कुंअरजी, एक राजपूत जो जनम रो काणो आदि ।

स्त्री-पात्रो के नाम भी परम्परागत हैं जैसे लीलावती अप्सरा, पँचकली, फूलमती, भानमती, चौबोली आदि । सामान्यतः रजपूतणी, राक्षसी, दासी, बामणी, राजकँवरी, छोकरी, बेटां री माउ, सुहागण, दुहागण, सौत, गुवालणी, गुवाल री मा, सासू आदि नामो से स्त्री पात्रो का उल्लेख किया गया है ।

नायक-नायिका के विशिष्ट नामकरण के अभाव मे कहानी की प्रभावान्विति मे कमी आती है, यथार्थ वातावरण की सृष्टि मे बाधा पडती है और कथा मे स्पष्टता व निश्चितता नही आ पाती । राजस्थानी कहानियो में बे नाम ओर वेधाम के अधिकाश पात्र अपना वर्गगत चरित्र तो विशिष्ट वेशभूषा और कार्य-व्यापार द्वारा प्रकट कर देते हैं । फिर भी नामकरण की निर्दिष्ट प्रणाली से जिस सास्कृतिक वातावरण की सृष्टि होती है उसका यहा अभाव है ।

सामान्यतः चारित्रिक विशिष्टता के अनुरूप ही नामकरण किया जाता है । प्रेमचन्द अपने पात्रो के नामकरण मे खूब सफल हुए है । मोटे कर्म मे निरत पात्र का नाम सरल और व्यावहारिक होता है जबकि अलौकिक चमत्कार से युक्त पात्र का नाम सूक्ष्म और प्रतीकात्मक होता है । इन राजस्थानी कहानियो के पात्रो का बेनाम और वेधाम होना उनकी लौकिक साहित्य की निकटता का बोधक है ।

(४) अति मानवीय तत्वों से गुंफित चरित्र :

राजस्थानी कहानियो में जो चरित्र है वे सामान्य भी हैं और विशिष्ट भी । जो विशिष्ट चरित्र हैं वे अलौकिक व्यक्तित्व से सम्पन्न है । अपनी विशिष्ट ज्ञान

गरिमा के कारण वे पशु-पक्षियो की बोली भी समझ लेते हैं और उनका रूप बनाकर अपना कार्य भी साध लेते हैं । 'चौबोली' का नायक राजा भोज भोजन करते समय चावल के प्रसंग को लेकर घटित होने वाला दो चींटियो की बात सुनकर हँस पड़ता है और गंगा के समीपस्थ जंगल मे कुए के पास चरने वाले बकरे-बकरी का वार्तालाप भी वह सुन लेता है जिसमे बकरा राजाभोज की बुद्धि को चुनौती देता हुआ कहता है "म्हारी अकल राजा भोज मिली नहीं छै । बाइर रै कहीयँ मरण नु' जाइ छै । सिर साबत तो ब्याह घणां ।" इतना ही नहीं वह स्वयं भी स्वर्णमाखी बनकर राक्षस से अपनी रक्षा करता है और अपने मित्रो को मक्खी रूप में ही चौबोली के दरबार मे ले जाकर उसका गर्व हरता है ।

ये पात्र तीनो लोक में एक साथ विहार कर सकते हैं । राजा मानधाता का सम्बन्ध धरती मे भी हैं और आकाश से भी । वह गरुड़पंख पर बैठकर इन्द्र के अखाड़े का वैभव देख आता हैं तो मोरपंख की सवारी कर पाताल के सातो लोक घूम आता है, सप्तमुखी घोड़े की सवारी उसे सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करवा देती है तो गदहे की कृपा मे वह पुनः अजयपाल से आ मिलता है ।

इन कहानियो मे मानव पात्र ही नहीं मानवेतर पात्र भी विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी हैं । पक्षियो मे सुग्गा और पशुओ मे घोड़ा-घोडी विशेष काम करते देखे जाते हैं । 'ढोला मारु री बात' मे मालवणि सुए के साथ ढोले को सन्देश भेजती है तो 'साहूकार ने सूआ री बात' मे सुग्गा ही शाह के बेटे के लिए विदेशी वस्तुओ का भाव लाता है । और कुंवर के लिए पद्मिनी का ब्याह रचाता है । सं ट पड़ने पर वह कुंवर के अश्व चालक का रूप बना कर पानी पंथ घोडे को प्राप्त करता है । 'खीवै बीजै री बात' मे चित्तौड के शाह देवीदास के यहाँ जय विजय नाम की जो दो घोडियां है वे भी अद्भुत हैं । एड़ मारते ही हवा हो जाती हैं । 'साहूकार न सूआ री बात' मे जो लाखीणी नाम की घोड़ी है उसके पेट मे तो पानी-पंथ घोडा है। उसी की सहायता से शुक और कुंवर समुद्र पार करते हैं ।

अतीत (सिद्ध), योगी, ऋषि मुनि और तपस्वियो के अलौकिक व्यक्तित्व का तो कहना ही क्या ? वे असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों और घटनाओं को भी संभव बना देते हैं । शिव-पार्वती भी इन कहानियो मे आये हैं पर मृत प्राणियो को जीवन-दान देने के लिए ही ।

कुल मिला कर कहा जा सकता कि इन कहानियो में चरित्र चित्रण परम्परागत ही है । उसमें व्यक्तिगत संवेदनाओ और मन की सूक्ष्म अनुभूतियो

का चित्रण नही हुआ है। वे एक विशेष प्रकार की परिस्थिति मे ही संचरण करने वाले प्राणी है।

शैलीगत विशेषताएँ :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये कहानियाँ मूल रूप से कहने के लिए निर्मित की गई हैं। फिर भी लिपिवद्ध कहानियो को देखकर उनकी शैलीगत प्रमुख विशेषताओ का पता लगाया जा सकता है।

(१) अन्तर्कथात्मक शैली :

इन कहानियो मे अन्तर्कथात्मक शैली के दर्शन होते हैं। 'चौबोली' की चारो कहानियाँ इस प्रसंग मे दृष्टव्य हैं। इस शैली के अन्तर्गत फूल की पँखुडियो की भांति एक कथा मे से दूसरी कथा निकलती है। 'राणी चौबोली री बात' मे प्रमुख कथा राजा भोज और चौबोली से सँबंधित है। चौबोली की मूक भंगिमा को मुखरित करने के लिए राजा भोज चार कथाएँ कहता है—(१) ब्राह्मण, कारीगर, दर्जी और सुथार-इन चार मित्रो की कथा (२) ब्राह्मण की बड़ी लड़की की कथा (३) राजकुमार और ब्राह्मण के मूर्ख लडके की कथा (४) राजा भोज को चौबोली का भरतार कहने की कथा। राजा के चारो मित्र एक एक कथा को बड़े ध्यान से सुनते है और अपना निर्णय देते हैं।

'खीवै बीजै री बात' मे भी अन्तर्कथाएँ है। मुख्य कथा खीवै और बीजै से संबंधित हैं अन्य चार कथाएं है—(१) बीजै का खीवै के घर चोरी करने का प्रसंग (२) खीवै की स्त्री की प्रेरणा से चित्तौड़ के शाह देवीदास की घोड़ियाँ चुरान की कथा (३) पाटण के सवा करोड़ रुपये के सतयुगी कलश को चुराने की कथा (४) कुड दाँतली के अण्डे लाने की कथा। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'राणी चौबोली री बात' मे राजा भोज के द्वारा चारो कहानियाँ कहलाई गई हैं जबकि यहाँ चारो बातो को घटित होते हुए दिखलाया गया है। ये कहानियाँ stories in action है।

राजा मानधाता री बात मे भी चार कमरो से संबंधित गरूड़पंख, मोर, सप्तमुखी घोड़े और गदहे की अन्तर्कथाएं है। 'सूराँ अर सतवादी री बात' मे भी वीरभान के कंवर व उसके तीन मित्रों—ब्राह्मण, लुहार, बढई—की कथाएँ हैं।

ये अन्तर्कथाएँ मुख्य कथा के साथ इस तरह सयोजित कर दी गई है कि

अलग सी लगती हुई भी उसके मूल प्रभाव को बाधित नही करती वरन् प्रभान्विति मे सहायक होती हैं ।

(२) गद्य के बीच बीच पद्यबद्धता :

ये कहानियाँ सामान्य रूप मे गद्य विधा के अन्तर्गत आती है पर कहानी कहने वाला बीच बीच मे पद्यो का भी दोहराता चलता है । गद्य-पद्य के मिश्रण से इन कहानियो का रूप चम्पू काव्य सा हो गया है । यह पद्य-प्रयोग भावपूर्ण स्थलो पर होता है । ये स्थल सामान्यतः देशवर्णन, रूपवर्णन, सदेश-कथन, विरह-व्यंजना, वीरभावाभिव्यक्ति मे सबंधित होते हैं । यहा जिन छन्दो का प्रयोग किया जाता है वे छन्द लोक प्रचलित काव्यो तथा गीतो मे लिये हुए होते हैं या प्रसिद्ध काव्य के उद्धरण भी हो सकते हैं । 'ढोला मारू री बात' मे जगह जगह पर, कल्लोल कवि द्वारा रचित 'ढोला मारू रा दूहा' से छन्द उद्धृत किये गये हैं । कभी कभी कथा कहने वाला एक ही भाव को पद्य मे भी कहता है और गद्य मे भी । 'जलाल बूबना री बात' मे जब बादशाह बूबना की उपस्थिति का कारण पूछता है तब बूबना के स्वर काव्य का आश्रय पाकर फूट पड़ते हैं—

"मेरी बहना मूमना, तासु पिया परदेस ।
तीनूं चैन तनक नही, निंद्रा पड़ै न लेस ।।"

पर बात मे इसका भाव तुरन्त बाद गद्य मे भी दे दिया गया है—
"म्हारी बहण मूमना है, उसका खाविन्द जलाल साहिब लड़ाई लडणे गये है । अब सावण की तीज आवै है । उसको तनक भी चैन नही सो अरज करणे आई हूँ ।"

कहना न होगा कि गद्य की यह भाव पुनरावृत्ति कहानी की रोचकता मे किसी प्रकार की बाधा नही पहुँचाती ।

'सूरॉं अर सतवादी री बात' मे भी कुंवर राजपुरुषो के आगे अपनी धीरता का परिचय एक दोहे मे ही देता है—

"सूराँ अर सतवादियाँ, धीराँ एक मनाह ।
दई करेसी कामड़ा, अरँड फलेसी ताह ।।'

भावपूर्ण स्थलो पर कहे गये ये पद्य सुन्दर नगीने से लगते हैं, इनके प्रभाव मे कहानी का सारा वातावरण सरस हो उठता है । इनसे कहानी के गति को एक प्रकार का सुखद विराम मिल जाता है ।

(३) वर्णनों की अधिकता :

राजस्थानी कहानियाँ वर्णन प्रधान होती है। ये वर्णन इतने प्रमुख बन जाते हैं कि कथा की गति शिथिल हो जाती है। वक्ता जब कहानी कहने लगता है तब बड़े धैर्य के साथ नगर की विशालता, सम्पन्नता, दुर्ग की अभेद्यता, युद्ध की भयंकरता, वीरो का रण-चातुर्य, सेना की रचना, हाथी-घोडो के लक्षण, नायिका के सौन्दर्य, शृंगारिक उपकरण, विरह-मिलन के चित्र, प्राकृतिक दृश्यो की छटा, आमोद-प्रमोद के साधन, खान-पान, लोक-विश्वास, राज्य-व्यवस्था आदि सबके विस्तृत वर्णन देता चलता है। ये वर्णन इस ढंग से दिये जाते हैं कि श्रोता को उनमे रस आता है और कथा का वातावरण मुखरित हो उठता है। मध्यकालीन राजस्थान का सामाजिक इतिहास इन वर्णनो मे छिपा पड़ा है।

'डाढालो सूर' बात मे सिरोही का वर्णन अपनी पूर्ण प्राकृतिक छटा के साथ निखरा पड़ा है—"सिरोही री सबजी बरणी नही जाय। साखियात इन्दर लोक समान सोभा छै। दूसरी अमरावती हीज छै। जब गेहूँ चणा री क्यारियाँ माँही नै खुसबू छाय रही है। तिजरो फूल रह्या छै। गूँदगरी, रामगरी, गुलबाड़ री बाड़ां लाग रही छै। पग-पग नाला-नीझरणा बह रह्या छै। घणा ही आँबा-महुवां रा मोर झुक रह्या छै। अढार भार बनस्पती झुक री छै। भँवरा ऊपर गुंजार कर रहिया छै। सारसा बोल रही छै। मयूर झिंगोर करै छै। अनेक भांतरा पसुपक्षी कलोल करै छै। सो इसी दीसै जाँणजे कैलासपुरी कना, अमरावती कना, वरुणपुरी, असी सिरोही विराज रही छै।"

युद्ध के वर्णन भी इन कहानियो मे सजीव हो उठे हैं। 'डाढालो सूर' मे भूंडण और उसके बच्चो के साथ सिरोही के सिपाहियो का वर्णन देखिये—"भूंडण और तीन चौल्हर मिल असवारा सूं कजियो कियौ। सौ मारिया, घायल किया, घणा घोडा रा पेट फाड़िया, घणा घायल किया। असवार घणा ही बरछी-भाला बाह्या पण भूंडण धकै चढ़ियौ जिको तौ जम रै घर गयौ और चौल्हरा है धकै पड़ियौ सो घायल हुवौ।"

राजाओ के वैभव-विलास का वर्णन भी बारीकी से हुआ है। 'जलाल-बूबना' कहानी मे जलाल का राजसी ठाट देखिये—"बागा माँही सैला करै। गुलाबजल री तूंगां सूं सांपड़ै। छिडकाव गुलाब रो हुवै। केसर-कस्तूरी, भीमसेनी कपूर रो मरदन हुवै—तिणरो कीच मंचियौ रहै। सो इण भांत जलाल गहरी मौज

आणद मूं रहै। फूला री तिवारा दारू पी'र लाल रहै। दिनरात सारो साथ मतवालो छकियौ रहै। सो इण भांति जलाल राजस करै।"

नायिका के सौन्दर्य वर्णन मे उपमाओ की झडी लग गई है। 'ढोला मारू री बात' मे मारवण के सौन्दर्य का चित्र देखिये—

पद्य-चित्र :

'जिम जिम घण अमलां कियां, नार चढँतो जाय।
तिम तिम मारवणी तणौ, तन तरणायौ थाय॥
हंस गवण कदली सुजंघ, कटि केहरि जिम खीण।
मुख ससहर खंजन नयण, कुच श्रीफल-कंठ वीण॥'

गद्य-चित्र :

'मारवणि पदमणि, नै चंद्रमा सो वदन, मृगलोचणी, हंस की सी गति, कटि सिंघ सरीखी छै। काया सोलमो सोनौ, मुख री सौरम किस्तूरी जिसी छै। गात री सोरम चंदण सरीखी छै। नासिका जाणै सुवा री चाच तथा दीपक री सिखा सरीखी छै। पयोधर श्रीफल जिमा। वाणी कोयल जिमी। दाँत जाणै दाडिम कुली। वेणी जाणै नागणी। बाहु जाणै चंपा री डाल। ऐडी सुपारी सी नै पगथली स्याम री जीभ सरीखी छै।'

विरह और मिलन के चित्र भी बोलते से लगते हैं। यहा बूबना की विरह-दशा का एक चित्र दिया जाता है—

"इसी भात बूबना नित बिलखै, ऐक टंक खाणी खावै, नेत्रां खवास बहोत धीरज बंधावै, बिलमावै पण मानै नही अर धरती पर पड़ी रहै। पान अरोगै नही, सुगंध लगावै नही, नवोड़ो, गहणो, कपडो-कपडी पहरै नही। खैरायत-खाणो डोढी ठौड़-ठौड़ फकीरा नूं कर राखियौ छै, जे जलाल री खातिर दुआ करावै।"

कहना न होगा कि ये वर्णन सजीव, चित्रात्मक और सरस हैं पर इनसे कथा की गति मे शिथिलता आती है जिसकी चिन्ता यहाँ के कथाकार को नही है।

(४) भाषागत प्रवाह और सजीवता :

राजस्थानी कहानियो की भाषा राजस्थानी है पर उसकी गोद मे अन्य

भाषाओं के शब्द-शिशु भी कल्लोल-क्रीड़ा करते देखे जाते हैं। राजस्थान प्रदेश में तुर्क और मुगलो के आक्रमण होते रहे फलस्वरूप यहाँ की बातों मे अरबी फारसी के शब्द पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। यह अवश्य है कि उनको मूल रूप मे स्वीकार न कर अपने अनुरूप ढाला गया है। उदाहरण के लिए 'हुकम', 'मुजरो', 'निजर', 'मसौरा', 'सिलाँम', 'माफक', 'दरियाव' 'पातिसाह,' 'चोबदार', 'काजी', 'खवास' आदि शब्द देखे जा सकते हैं।

भाषा को सजीव और रोचक बनाने के लिए कहावतो और मुहावरो का प्रयोग विशेष रूप मे किया गया है। इनमे भाषा की प्राजलता और परिपक्वता का बोध होता है। 'सिर सावत तो ब्याह घणां', 'साकडै पडियो' (आपत्ति में पडा) बैरारा हठ भूंडा (स्त्रियों का हठ बुरा होता है), हुई साठी नै बुध नाठी (सठियाना), बाटी खातां बूजी आवै (चैन से जीवन-यापन करने वाले को उन्माद होता है), पगाँरी झाल माथै गई (पैर से सिर तक क्रोध व्याप्त हो जाना), लोह करो (वार करो) कागदा मे ही लपेटियो आऊँ (मेरी मृत्यु का समाचार ही कागज में लिखा हुआ आए) आदि इस संदर्भ मे द्रष्टव्य है।

भाषा की रवानगी, पात्रानुरूपता, लयात्मकता और चित्रात्मकता भी देखने योग्य है। मुसलमान पात्र उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग विशेष करते दिखाई देते है। भाषा की चित्रात्मकता का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। 'खीवें बीजैरी बात' मे बीजा नाडोल आकर चोरी करने के लिए निकलता है, उस समय का यह दृश्य-चित्रण कितना स्वाभाविक और सजीव बन पडा है—"आधा भादवारी आधी रात गई छै ताहरा काली कांबल री गाती मारि टोपी माथे मेल्हि जाँघीयो पहिरी छुरो काडि कड़ि बाँधि अर सहर माँहि चोरी नु चालियो।"

भाषा मे यथावसर अलंकारो का खूब प्रयोग देखने को मिलता है। ये अलंकार रूढ़ भी हैं और मौलिक भी। मौलिक प्रयोग के दर्शन वहाँ होते है जहाँ उन पर स्थानिक रंग (Local colour) चढ़ गया है। यहाँ डाढालो (सुअर) और राव बीसलदे के बीच हुए युद्ध-वर्णन मे जो अल्कार प्रयुक्त हुए है वे देश-काल की पृष्ठ भूमि मे कितने 'फिट' बैठे है—"राव नूं चाढ़ियो ! लोग माथ रा साराही भेला हुआ। लोग मगना घुमगे किया ऊभा रावरी डील सम्भाले छै और डाढालो निलोह थकियो परलै पासै जाय ऊभो खेरूँ करै छै। छटा चूगे छै मँख मूं खम लगाय फोज साम्हो जोवै छै। जे राव रै कन्है अगो लोग चढियो पाले रो घुमरो दीठौ। सो त्यूं उठायनै फोज मे पाछा नाखिया ज्यूं बजूलिये आया सुगडा पाँन घास रा तिणका टड्जावै त्यूं

सारो लोग बिखर गयो । मुँह सूं आयौ कहिता ही चालिया, भागिया परा जाय छै, ज्यूं लुहार घण मारते मुँह सूं जिको जवाब निसरै सो ही जवाब घणी ताल लग चलियो जावै । त्यूं राव री फौज ऐसी बिजलवाई गई सो बाजे-बाजे लोग आव कोस ताईं गयो उठा ताईं मुँह सूं उही जवाब आये-आये रो रहियो ।"

भाषा को गति और शक्ति देने के लिए संवादों का प्रयोग भी इन कहानियों मे किया गया है । पर ये संवाद आधुनिक कहानी के ढंग के नहीं है । न तो यहाँ वैसा परिष्कार ही है न अनुच्छेदात्मक विभाजन ही । ये संवाद पद्यात्मक भी हैं और गद्यात्मक भी । दोनों के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

पद्यात्मक संवाद :

नगारो सुण भूंडण कही—आज रा निर्मांण कैसा'क वाजै छै । तद डाढ़ालौ कही—

भूंडण मन आणन्द कर, बाजण दे नीसांण ।
जो मौजा गावां जिया, तो वगिया, परवाणं ।।

जद भूंडण कही—

अहरण ठमको म्हे सुण्यौ, लोहो घड़े लुहार ।
घड़जै घमजै बग्गड़ा, तौ काजै हथियार ।।

तद डाढालो कही—

अहरण भांजूं गज गिलूं, समूचौ ह्वो लुहार ।
घोड़ो पाडूं पाखरयो, सूं बरछी असवार ।।

फेर भूंडण कही—

ऐक विराणा जव चरै, दूजै भय ज नांहि ।
कदे ऐक देखावस्यूं, लड़ बाहर फल माही ।।

जद डाढालो कहै—

भूं लेजा चील्हरा, हूं जावूं रण थाट ।
कै रोवाणूं पदमणो, (का) मांस विकाऊं हाट ।।

(डाढालो सूर री बात)

गद्यात्मक संवाद :

"जाहरा कुंवर नूं राणी पुछीयो। कही—राज ए पातल तीन थे परिमायर थे। जनावरा नै कैरे नाव घातो छौ सु कहो । ताहरां कुंवर कही वैराना साच कही जै नही। ताहरा राणी कही तौ हूँ थाहरी अरध सरीरी किसी विध छुं अर मै थारै पगा राखस ने मरायौ अर थे मना साच कहो नही तौ थाहरो प्यार किसौ। ताहरा कुंवर कही—म्हारा तीन्ह चाकर छै। हूं वीच राख आयौ छुं। तेना ए पाताला परासूं छुं।"

(बात सूरा अर सतवादी री)

शैली की दृष्टि से ये कहानियाँ इतिवृत्तात्मक हैं। इनको नाटकीय, आत्मकथात्मक या कौतूहल पूर्ण ढँग से नही रचा गया।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी वात साहित्य की अपनी विशेषताएं है जो उसे आधुनिक कथा-साहित्य से अलग करती हैं। इन कहानियो मे चाहे आधुनिक कहानी जैसा कथा का गठन, मनोवैज्ञानिक, चरित्र-चित्रण, संवादो का उतार-चढ़ावा, जीवन की समस्याओ का यथार्थ उद्घाटन और बौद्धिक चिन्तन न हो पर उनमें जातीय भावनाओ का वर्णन, सामाजिक जीवन का स्वस्थ वातावरण और मानवता के अन्तरंग मिलन का चित्र अवश्य है।
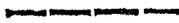
राजस्थानी वेलि साहित्य : परम्परा और प्रगति

लोक साहित्य की यह विशेषता है कि उसमे व्यक्तित्व का लोप कृतित्व मे हो जाता है। व्यक्ति अलग मे उभरा हुआ प्रतीत नही होता वह तो समाज की अन्तर्लय मे ही अपनी तान मिलाया करता है। लोक मानस मे अनन्त तरगें उठती रहती है, न उनका रूप बदलता है न रंग। काल की आंधी उसके रंग को फीका नही कर सकती, न देश विदेश की परिस्थितिया ही उसके रूप को विरूप कर सकती है। शिष्ट साहित्य पर भी कुछ अंशो में यह बात लागू हो सकती है। दोहा, सोरठा और सतसई की परम्परा, मंगल काव्यो का विधान, शतको की धूमधाम इसके प्रतीक हैं। 'वेलि' नाम की परम्परा भी इसी सत्य को ध्वनित करती है।

वेलि साहित्य की परम्परा और उसका विकास

संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश वेलि साहित्य :

वल्ली, वल्लरी, वेलि और वेल संज्ञक रचनाओ की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वाङ्मय को उद्यान मानकर ग्रंथो को—चाहे वे व्याकरण, वेदान्त, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, अलंकार शास्त्र, कोष, इतिहास, नीति-शास्त्र, काव्य आदि किसी भी विषय से सम्बन्ध रखने वाले हो—वृक्ष तथा वृक्षागवाची-लता, मंजरी, पल्लव, कलिका, गुच्छक, कंदली, बीज आदि—नाम से पुकारने की प्राचीन परिपाटी रही है। वेलि तथा वेल संज्ञक रचनाएँ भी इसी प्रकार की हैं। कुछ उपनिषदो में अध्यायो या अध्यायो के विभाग का वल्ली नाम मिलता है। कठोपनिषद् में दो अध्याय और छह वल्लियाँ हैं। तैत्तिरीय उपनिषद के सातवें, आठवें और नवमें प्रपाठक को क्रमशः 'शिक्षावल्ली', 'ब्रह्मानद वल्ली' और 'भृगुवल्ली' कहा गया है। आगे चलकर वल्ली संज्ञक कई रचनाएँ लिखी गईं उनमे से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

(१) कठवल्ली उपनिषद् (२) षडवल्ली उपदिषद् (३) अम्बुज वल्ली कल्याणम् (४) अम्बुजवल्ली दण्डकम् (५) चातुर्मास्य व्रत कल्पवल्ली (६) द्रव्य गुण कल्पवल्ली (७) नानार्थ कल्पवल्ली (८) विकृतिवल्ली (९)

पद्धति कल्पवल्ली (१०) सूर्यसिद्धान्त सव्याख्य कल्पवल्ली (११) चण्डी सपर्या क्रम कल्पवल्ली (१२) मधु–केलिवल्ली (१३) सपर्या क्रम कल्पवल्ली (१४) क्षमावल्ली बीज (१५) चिकित्सा क्रम कल्पवल्ली (१६) पंचाग कल्पवल्ली (१७) श्रुत्यन्त कल्पवल्ली (१८) वेदात सिद्धान्त कल्पवल्ली ।

यही 'वल्ली' शब्द प्राकृत और अपभ्रंश में 'वल्लि' होता हुआ राज–स्थानी में 'वेलि' तथा 'वेल' मे रूपान्तरित होगया । इस नाम की सर्व प्रथम रचना रोड़ाकृत 'राउलवेल' है जिसका समय ११ वी शती के लगभग है। विद्यापति ने अपनी रचना का नाम 'कीर्तिलता' रखा था पर उसे 'वल्लि' भी कहा है । इस प्रकार संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश से होती हुई यह वेलि साहित्य की परम्परा राजस्थानी-गुजराती और व्रजभाषा मे विकसित हुई । ।

व्रजभाषा वेलि साहित्य :

व्रजभाषा मे 'लता' 'और 'वेलि' दोनो नाम से लिखी जाने वाली अनेक रचनाएँ मिलती हैं । अकेले रसिकदास की २० 'लता' संज्ञक रचनाएँ और चाचा वृन्दावनदास की ७२ 'वेलि' संज्ञक रचनाएँ मिलती हैं । अन्य वेलिकार हैं— रामराय, तुलसीदास, घनानन्द, नागरीदास, पद्माकर, व्रजनिधि, अमृतराम आदि ।

गुजराती वेलि साहित्य :

गुजराती में कई जैन और जैनेतर कवियो ने वेलियो की रचना की है। जैन गुजराती वेलियो की रचना जैन-सन्तो द्वारा विशेष रूप से हुई है । एक स्थान पर चातुर्मास के सिवाय अधिक दिनो तक निवास करने का आचार नही होने से जैन साधु प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करते रहे हैं । गुजराज और राजस्थान मे जैन-साधुओ की अधिकता है । दोनो प्रान्तो मे इनका विहार होता रहता है । इस कारण जैन गुजराती वेलियो की भाषा राजस्थानी मिश्रित है । अन्य अजैन गुजराती वेलियो के नाम इस प्रकार हैं—वल्लभ वेल (केशवदास वैष्णव), सीतावेल (वजिया), श्रुतवेल (जीवनदास), व्रजवेल (प्रेमानंद), भक्तवेल (दयाराम) आदि ।

वर्त्तमान काल का हिन्दी वेलि साहित्य :

आज भी व्रज और राजस्थानी में साहित्य रचा जाता है । पर पहले की

तुलना में बहुत कम। अब अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ी बोली (हिंदी) होने पर भी 'वेलि' अभिधान देखने को मिलता है। उसका क्षेत्र अब केवल पद्य (कविता) नही रहा वरन् गद्य (उपन्यास, नाटक) भी हो गया है। कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

वंशवल्लरी (उपन्यास), अमरवेलि (उपन्यास), विजय वेलि (नाटक) आदि।

राजस्थानी वेलि साहित्य :

विषय और शैली की दृष्टि से संपूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को तीन भागो मे बाँट सकते हैं—

(१) लौकिक वेलि साहित्य ।

(२) जैन वेलि साहित्य ।

(३) ऐतिहासिक वेलि साहित्य ।

कालक्रम की दृष्टि से इस साहित्य का इतिहास १५ वीं शती मे १६ वीं शती तक रहा है।

पन्द्रहवीं शती का साहित्य :

'राउल वेल' को छोड़कर लिखित रूप में 'वेलि' 'संज्ञक रचना का कोई उल्लेख इस शताब्दी तक नही मिलता है। लौकिक वेलि साहित्य के रूप में जो रचनाएँ मिली हैं वे इस प्रकार हैं—

	रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल	छंद सं०
(१)	रामदेवजी री वेल	संतहरजी भाटी	१५ वी शती का उत्तरार्द्ध	२४
(२)	रूपादे री वेल	,,	,,	५८
(३)	तोलादे री वेल	—	,,	४०
(४)	रत्नादे री वेल	तेजो	१५ वीं शती का अन्त	१५ पद

सोलहवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि भट्टारक सकलकीर्ति १६ वी शती का आरंभ

(२) चिहुंगति वेलि	वाछा	सं० १५२० (लिपिकाल)	१३५
(३) जम्बूस्वामी वेल	सोहा	सं० १५३५ (लिपिकाल)	१८
(४) रहनेमि वेल	,,	,,	१६
(५) प्रभव जम्बूस्वामी वेलो	,,	सं० १५४८ (लिपिकाल)	२७
(६) पंचेन्द्रि वेलि	ठकुरसी	सं० १५५०	६ भाग
(७) नेमिश्वर की वेलि	,,	सं० १५५० के आसपास	५भाग
(८) गरभ वेलि	लावण्यसमय	सं० १५५३-८६ के मध्य	११४
(९) गरभवेलि(जइत वेलि)	सहजसुन्दर	सं० १५७०—८२ के मध्य	३४
(१०) वेलि	छीहल	सं० १५७५-८४ के मध्य	४ पद
(११) नेमि परमानंद वेलि	जयवल्लभ	सं० १५५७ के आसपास	४८
(१२) वल्कल वीरकुमार, ऋषिराज वेलि	कनक	सं० १५८२-१६१२ के मध्य	७५
(१३) क्रोध वेलि	मल्लिदास	सं० १५८८	३५
(१४) भरत वेलि	देवानंदि	—	२२
(१५) सुदर्शन स्वामीनो वेलि	वीरचंद	१६ वी शती का अंत	अपूर्ण
(१६) जम्बूस्वामीनी वेलि		,, ,,	,,
(१७) बाहुबलि की वेलि		,, ,,	

(ख) लौकिक वेलि साहित्य:

(१) आई माता री वेल	संत सहदेव	सं० १५७६	३ पद

सत्रहवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य:

(१) चंदनवाला वेलि	अजितदेव सूरि	सं० १५९७-१६२६ के मध्य	२६
(२) सम्यक्त्व वेलि प्रबंध	साधुकीर्ति	सं० १६१४ के आसपास	५४
(३) गुणठाणा वेलि	जीवंधर	सं० १६१६ (लिपिकाल)	२८
(४) लघु बाहुबलि वेलि	शान्तिदास	सं० १६२५ (लिपिकाल)	६ पद

(५) अइवपद वेलि	कनकसोम	सं० १६२५	४६
(६) गुरु वेलि	भट्टारक धर्मदास	सं० १३३८ के पूर्व	२८
(७) स्थूलिभद्र मोहन वेलि	जयवन्त सूरि	सं० १६४२	२१५
(८) नेमिराजुल बारह मासा वेल प्रबन्ध	,,	सं० १६५० के आसपास	७७
(९) वर्द्धमान जिन वेलि	सकलचन्द्र उपाध्याय	सं० १६४३-६० के मध्य	७७
(१०) साधु कल्पलता साधुवन्दना मुनिवर सुरवेलि	,,	,,	१४४
(११) हीरविजय सूरि देशना वेलि	,,	सं० १६५२ के बाद	११३
(१२) ऋषभगुण वेलि	ऋषभदास	सं० १६६६-८७ के बीच	६ ढाल
(१३) बलभद्र वेलि	सालिग	सं० १६६६ (लिपिकाल)	२८
(१४) चारकषाय वेलि (अपूर्ण)	विद्याकीर्ति	सं० १६७० के आसपास	५६
(१५) सोमजी निर्वाण वेलि	समयसुन्दर	सं० १६७० के आसपास	१०
(१६) सीताशील पताका गुण वेलि	भट्टारक जयकीर्ति	सं० १६७४	
(१७) प्रतिमाधिकार वेलि	सामत	सं० १६७५ (लिपिकाल)	१८
(१८) बृहद् गर्भ वेलि	रत्नाकरगणि	सं० १६८०	१३ ढाल
(१९) पंचगति वेलि	हर्षकीर्ति	सं० १६८३	६ भाग
(२०) पार्श्वनाथ गुण वेलि	जिनराज सूरि	सं० १६८९	४४
(२१) मल्लिदासनी वेलि	ब्रह्म जयसागर	—	—
(२२) आदित्यवारनी वेलि कथा		—	—

(ख) चारणी वेलि साहित्यः

(१) किसनजी री वेलि	सांखला करमसी रूणेचा	सं० १६०० के आसपास	२२
(२) गुणचाणिक वेल	चूंडो दधवाडिया	१७ वीं शती का आरंभ	४१
(३) देईदास जैतावत री वेल	आखो भाणौत	सं० १६१३ के आसपास	२३
(४) रतनसी खींवावत री वेल	दूदो विसराल	सं० १६१४ के आसपास	७२

(५) उदैसिंघ री वेल	रामा सादू	सं० १६१६ के आसपास	१५
(६) चांदाजी री वेल	बीठू मेहा दूसलांणी	स० १६२४ के बाद	४१
(७) क्रिसन रुक्मणी री वेल	राठौड पृथ्वीराज	सं० १६३७-४४ के मध्य	३०१ से ३०७
(८) त्रिपुर सुन्दरी री वेल	जसवन्त	सं० १६४३ (लिपिकाल)	९ दोहे २ कुंड०
(९) रायसिंघ री वेल	सांदू माला	सं० १६५३ के आसपास	४३
(१०) महादेव पार्वती री वेल	आढा किशना	सं० १६६०-१७०० के मध्य	३८२
(११) राउ रतनरी वेल	कल्याणदास महडू	सं १६६४-८८ के मध्य	१२३
(१२) सूरसिंघ री वेल	गाडण चोलो	सं. १६७२	
(१३) सोभा री वेल	सोभा	सं. १६८३ (लिपिकाल)	

अठारहवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) प्रवचन रचना वेलि	जिनसमुद्र सूरि	सं. १६९७-१७४० के मध्य	अपूर्ण
(२) बारहभावना वेलि	जयसोम	सं. १७०३	१३ ढाल
(३) हीरानंद वेलि	शुभंकर	सं. १७१२	७४
(४) गुणसागर पृथ्वी वेलि	गुणसागर	सं. १७२४ के आसपास	४६
(५) आदिनाथ वेलि	भट्टारक धर्मचंद	स० १७३०	५ भाग
(६) षडलेश्या वेलि	साह लोहट	सं. १७३०	
(७) अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय	यशोविजय	सं. १७००-३९ के मध्य	२९
(८) अमृत वेलिनी नानी सज्झाय	,,	,,	१९
(९) सुजस वेलि	कांतिविजय	स. १७४५ के आसपास	४ ढाल
(१०) संग्रह वेलि	बालचंद	सं. १७७५	—
(११) नेमराजुल वेल (पभंग वेल)	चतुरविजय	सं. १७७६	२०५
(१२) नेमि स्नेह वेलि	जिन विजय—		१० ढाल

(१३) विक्रम वेलि	मतिसुन्दर	—	—

(ख) चारणी वेलि साहित्य:

(१) रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि	महेसदास	१८ वीं शती का प्रारंभ	१२७
(२) डूंगरसी जी री वेलि	समधर	सं. १७१७-३४,(लिपिकाल)	२६
(३) अनोपसिंह री वेल	गाडण वीरभांण	सं. १७२६ से पूर्व	४१

(ग) लौकिक वेलि साहित्य :—

(१) पीर गुमानसिंघ री वेल	—	१८ वीं शती का अन्त	१०२

उन्नीसवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) जीव वेलड़ी	देवीदास	सं० १८२४ के आसपास	२१
(२) वीर जिन चरित्र वेलि	ज्ञानउद्योत	सं. १८२५ के आसपास	१७
(३) शुभ वेलि	वीर विजय	सं. १८६०	
(४) स्थूलि भद्रनी शीयल वेल	,,	सं. १८६२	१८ ढाल
(५) स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि	माणकविजय	सं. १८६७	१७ ढाल
(६) नेमिश्वर स्नेह वेलि	उत्तमविजय	सं. १८६७	१५ ढाल
(७) सिद्धाचल सिद्ध वेलि	,,	सं. १८८५	१३ ढाल
(८) नेमिनाथ रस वेलि	,,	सं. १८८६	
(९) कल्प वेल	—	सं. १९२३ (लिपिकाल)	अपूर्ण

(ख) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) अकल वेल	—	१९ वीं शती (लिपिकाल)	२२
(२) वावा गुमानभारतीरी वेल	चिमनजी कविया	१९ वीं शती का उत्तरार्द्ध	४४

असंभव नहीं कि अन्य प्रान्तीय एवं द्रविड परिवार की भाषाओं ने भी वेलि-परम्परा को जीवित रखा हो। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि वेलि साहित्य का इतिहास उस सरित की तरह है जो विरल

रूप मे अपने उद्गमस्थल से निकल कर मध्यवर्ती भागो (मैदानो) में विकुल प्रवाह के साथ बहती हुई मुहाने तक आते आते सूख सी गई है[1]।

क्या राठौड़ पृथ्वीराज वेलि-परम्परा के प्रवर्त्तक थे ?

पृथ्वीराज कृत 'कृष्ण रुक्मणी री वेलि' इतनी प्रसिद्ध रही कि आलोचक उसे न केवल सबसे प्राचीन वेलि वरन् पृथ्वीराज को वेलि-परम्परा का प्रवर्त्तक तक मान बैठे है[2] पर यह कथन साधार नही है । पृथ्वीराज से पूर्व राजस्थानी में कई चारणी तथा जैन वेलियाँ लिखी गईं । चारणी वेलियो मे निम्नलिखित कृतियाँ पृथ्वीराज की वेलि से प्राचीनतर हैं ।—(१) राउल वेल (२) किसनजी री वेलि (३) गुण चाणिक वेल (४) देईदास जैतावत री वेल (५) रतनसी खीवावत री वेल (६) उदेसिंघरी वेल (७) चादाजीरी वेल ।

उपर्युक्त चारणी वेलियो के अतिरिक्त निम्नलिखित जैन वेलियाँ भी पृथ्वी राज की वेलि से पूर्व रचित मिलती हैं—

(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि (२) चिहुगति वेलि (३) जम्बूस्वामी वेलि (४) रहनेमि वेलि (५) प्रभाव जम्बूस्वामी वेलि (६) पंचेन्द्रि वेलि (७) नेमिश्वर वेलि (८) गरभ वेलि (९) गरभ वेलि (जइत वेलि) (१०) वेलि (छीहल कृत) (११) नेमि परमानन्द वेलि (१२) वल्कल चीरकुमार ऋषिराज वेलि (१३) क्रोध वेलि (१४) भरत वेलि (१५) सुदर्शन स्वामीनो वेलि (१६) जम्बू स्वामिनी वेलि (१७) चंदनबाला वेलि (१८) सन्वय वेलि प्रबंध (१९) गुणठाणा वेलि (२०) लघु बाहुबलि वेलि (२१) जइत पद वे ल (२ गुरू वेलि ।

निम्नलिखितत लौकिक वेलियाँ भी पृथ्वीराज कृत वेलि से पूर्व की ही ठहरती हैं—

१—इधर श्री मुकनसिंह ने हाल ही मे चारणी शैली मे अमर शहीद भाटी शैतानसिंह, लोकदेवता पाबू जी और वीर अमर सिंह राठौड़ पर तीन वेलियां लिख कर इस परम्परा को फिर से जीवित किया है ।

२— पृथ्वीराज का यह ग्रंथ (वेलि) एक परम्परा की स्थापना करता है जिसे राजस्थान तथा व्रजमण्डल के भक्त कवियो ने आगे तक निवाहने का प्रयत्न किया है—पृथ्वीराज के द्वारा लगाई गई इस वेलि को ये भक्त कवि नित्य सीचते रहे । —डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित : वेलि की भूमिका (प्रथम सस्करण) पृ. ४७

(१) रामदेवजी री वेल (२) रूपादेरी वेल (३) तोलादे री वेल (४) आईमाता री वेल ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्वीकार करना पडेगा कि पृथ्वीराज की वेलि 'वेलि काव्य परम्परा' की प्रवर्त्तक न होकर चली आती हुई परम्परा मे ही चिन्तामणि की भाँति अपना उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण करती रही है जिसके आगे न तो पूर्ववर्ती वेलियो का प्रकाश ठहर सका है न परवर्ती वेलियो का ।

वेलि-नाम :

काव्य-विशेष के नामकरण मे कई प्रवृतियाँ काम करती हैं । कभी वर्ण्य-विषय, कभी छंद, कभी शैली, कभी चरित्र, कभी घटना, कभी स्थान और कभी केवल मात्र आकर्षण-वृत्ति से प्रेरित होकर कवि लोग अपनी रचनाओ को विविध संज्ञाओ से अभिहित करते हैं । वेलि-नाम भी उनमे से एक है । इस नाम पर निम्नलिखित दृष्टियो से विचार किया जा सकता है—

(क) वेलि शब्द की व्युत्पत्ति :

इस संबंध मे विद्वानो के विभिन्न मत है। डा० माताप्रसाद गुप्त तथा डा० भोलानाथ तिवारी इसे 'विलास' शब्द से विकसित मानते हैं। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० बाबूराम सक्सेना और डा० भोलाशंकर व्यास इसे सस्कृत 'वल्ली' अथवा 'वेल्लि' से व्युत्पन्न मानते हैं ।

(ख) वेलि शब्द का कोषपरक अर्थ :

यह शब्द वल्लरी, बल्ली, बेल, बेलड़ी, वेलि वल्लर-वल्लरि, वल्लरी, वल्लि, वल्लिका, वल्ली, वेल्लि वेलिका आदि कई रूपो मे मिलता है । यह शब्द मुख्य रूप से सन्तान, वंश, आनन्द, लता, उपवन, लहर आदि अर्थो मे प्रयुक्त होता है । इससे संवधित दो मुहावरे भी प्रचलित है । (१) बेल बढना-वंश वृद्धि होना । (२) वेल मेढे चढ़ना-काम पूरा होना ।

(ग) वेलि साहित्य में प्रयुक्त वेल या वेलि शब्द का तात्पर्य :

संपूर्ण वेलि साहित्य मे वेल या वेलि शब्द निम्नलिखित ६ रूपो (अर्थो) मे प्रयुक्त हुआ है—

(अ) वेलि-रूपक:—वेलि शब्द संसार, शरीर, कनक, पाप, ज्ञान, अमृत, सुयश आदि के साथ उपमान रूप मे प्रयुक्त हुआ है ।

(आ) काव्य-संज्ञा :—के रूप मे कवियो ने वेलि या वेल शब्द का प्रयोग

प्रायः वेलि काव्य के आदि-अन्त मे किया है। कई वेलियो मे यह प्रयोग नही भी हुआ है।

(इ) छद-गीतः—छद के नामोल्लेख के रूप मे वेलि शब्द का प्रयोग वेलिकारो ने एकाध वेलियो मे किया है।

(ई) साथी-सहायक :—रूप मे वेलि शब्द का प्रयोग कतिपय स्थलो पर हुआ है।

(उ) लहर—तरंगः—लहर—तरंग के अर्थ मे 'वेल' शब्द का प्रयोग कुछ स्थलो पर हुआ है।

(ऊ) लता—वल्लरी :—लता—वल्लरी के अभिधेय अर्थ में वेल, वेलि तथा लडी का प्रयोग कई स्थानो पर हुआ है।

(घ) वेलिनाम पर विद्वानो के विभिन्न मतः—समग्रतः इन मतो को निम्नलिखित ८ वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

(१) वेलियो छंद के आधार पर वेलि—नामकरण की कल्पना करने वाला वर्ग।

(२) 'वेलि' के आधार 'वेलियो' छंद की संभावना प्रकट करने वाला वर्ग।

(३) वेलि को विवाह-मंगल-विलास के अर्थ में ग्रहण करने वाला वर्ग।

(४) वेलि रूपक की प्रतिपादना करने वाला वर्ग।

(५) स्तोत्रो को ही लिपिकारो की भूल से वेलि समझने वाला वर्ग।

(६) वेलि को केवल मात्र वीर-वीरांगनाओ के चरिताख्यान तक ही सीमित रखने वाला वर्ग।

(७) वेलि को यश और कीर्ति-काव्य के रूप में ग्रहण करने वाला वर्ग।

(८) वेलि को वल्ली, गुच्छक, स्तवक आदि अध्यायो से स्वतंत्र काव्य-विधा के रूप मे विकसित मानने वाला वर्ग।

वास्तव में मूलरूप से वेलि शब्द किसी साहित्य के विशेष प्रकार का नाम नही है। 'लता' की भाँति किसी भी रचना के साथ यह जोडा जा सकता है। काल-प्रवाह के साथ वल्ली शब्द अध्याय या सर्ग का वाचक न रहकर एक स्वतन्त्र काव्य-विधा का ही प्रतीक बन गया।

राजस्थानी वेलि साहित्य का वर्गीकरण :

राजस्थानी वेलि साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित दृष्टियो से किया जा

सकता है :—

(१) रचना-स्थल:—कुछ वेलियो अन्त:साक्ष्य के रूप मे रचना-स्थल का उल्लेख हुआ है । इससे पता चलता है कि इस वेलि साहित्य की रचना राजस्थान और गुजरात मे हुई है ।

(२) रचनाकार:—वेलिकारो की स्थूल रूप से दो श्रेणियाँ हैं (क) चारण कवि और (ख) संत कवि । चारण-कवियो के दो वर्ग है । (१) (१) जन्म मे चारण कवि । (२) काव्य-शैली से चारण कवि । संत-कवियो के भी दो वर्ग हैं । (१) जैन संत कवि और (२) जैनेतर संत कवि । जैन संत-कवियो मे कुछ तो श्वेताम्बर हैं कुछ दिगम्बर । श्वेताम्बर जैन संत कवि दो प्रकार के है—तपागच्छीय और खरतर गच्छीय । जैनेतर संत कवियो में रामदेवजी और आईमाता के भक्त कवि आते हैं ।

(३) रचना-शैली:—रचना-शैली की दृष्टि से इसके तीन भाग किये जा सकते हैं—

(क) चारणी-शैली :—इस शैली मे ऐतिहासिक और धार्मिक वेलियाँ लिखी गई हैं । इस शैली की प्रधान विशेषता है साहित्यिक डिंगल भाषा का प्रयोग । वयणसगाई शब्दालंकार सर्वत्र प्रयुक्त हुआ है । छंद के रूप मे छोटा साणोर अपने तीनो भेदो—वेलियो, सोहणो, खुड्दसाणोर—में आया है ।

(ख) जैन-शैली :—इस शैली मे कथात्मक, ऐतिहासिक एवं उपदेशात्मक जैन वेलियाँ लिखी गई हैं । इस शैली की प्रधान विशेषता है सरल सुबोध जनसाधारण की भाषा का प्रयोग । छंद भी लोक—धुन पर आधारित ढाल आदि प्रयुक्त हुए है । मात्रिक छंदो मे दोहा, सार, सखी, हरिपद आदि प्रमुख हैं ।

(ग) लौकिक शैली:—इस शैली मे लिखी गई वेलियाँ लोक-साहित्य के अन्तर्गत आती हैं । गायन-तत्व इस शैली की प्रमुख विशेषता है । भाषा ग्रामीण है जो आज भी जनसाधारण मे बोली जाती है ।

(४) रचना—स्वरूप:—रचना-स्वरूप की दृष्टि से वेलि साहित्य के दो रूप मिलते हैं—प्रबन्ध और मुक्तक ।

(५) रचना-विषय:—रचना-विषय की दृष्टि से संपूर्ण राजस्थानी-वेलि साहित्य को तीन भागो मे बांट सकते है—

(क) चारणी वेलि साहित्य:– इसके दो प्रधान भेद हैं—

(१) ऐतिहासिक:—इसमे राजकुल तथा सामन्त कुल के विभिन्न वीरो का यशोगान किया गया है।

(२) धार्मिक-पौराणिक:— इसमे विष्णु (कृष्ण और राम) और शिव-शक्ति के प्रति भक्ति-भावना प्रगट की गई है।

(ख) जैन वेलि साहित्य:— इसके तीन प्रधान भेद हैं—

(१) ऐतिहासिक:— इसमे वेलिकारो द्वारा अपने गुरु (धर्माचार्य) का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है।

(२) कथात्मक:—इसमे जैन-कथाओ को काव्य का विषय बनाया गया है। ये कथाएँ विशेषकर तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, सती तथा अन्य महा-पुरुषो से संबधित हैं।

(३) उपदेशात्मक:— इसमे आध्यात्मिक उपदेश दिया गया है।

(ग) लौकिक वेलि साहित्य :—इसके तीन प्रधान भेद हैं—

(१) ऐतिहासिक—इसमें रामदेवजी, आईमाता तथा इनके भक्तो का जीवन-चरित्र वर्णित है।

(२) जनश्रुतिपरक—इसमे रत्नादे की वेल आती है। जनश्रुति के रूप मे यह कथा मिलती है।

(३) नीतिपरक—इसमे 'अकल वेल' आती है जिसमे सामान्य नीति की बातें कही गई है।

वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

चारणी वेलि साहित्य : ऐतिहासिक

पात्र-दृष्टि से इसे दो भागो मे बाटा जा सकता है—

(क) सामन्त-कुल के पात्र और (ख) राजकुल के पात्र । इसी प्रकार विषय की दृष्टि से भी इसके तीन भाग किये जा सकते है—

(क) युद्ध वर्णन (ख) कीर्ति-वर्णन (ग) शृंगार वर्णन ।

सामान्य विशेषताएँ :

ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की सामान्यत–विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं—

(१) इसमे राजा-महाराजा-सामन्तो की वीर प्रशस्ति गाई गई है। ऐतिहासिकता की (नामो, स्थानो एव घटनाओ मे) पूरी पूरी रक्षा की गई है। कही-कही राजा-महाराजाओ की वैयक्तिक घटनाएँ भी आई है जिनकी पुष्टि भी ख्यातो मे होती है । अलौकिक तत्वो और कथानक रूढियो का प्रायः आश्रय नही लिया गया है ।

(२) यहाँ जो नायक हैं वे या तो राजा-महाराजा है । या सामन्त-सरदार। वीरता उनमे कूट कूट कर भरी है । अपने देश की रक्षा के लिए अथवा स्वामी-भक्ति के निर्वाह के लिए शत्रुओ से मुकाबला करने की अमिट साध ले कर ये आगे बढते हैं । वीर होने के साथ साथ ये दानी, उदार, विद्वान और दयालु भी होते हैं । इनकी प्रेम-भावना का चित्रण यहाँ नही किया गया है यदि कही शृंगार आया भी है तो वीर भावना को उद्दीप्त करने के लिए ही ।

(३) नायक की प्रशस्ति के साथ-साथ नायक की वंशावली का भी कतिपय वेलियो मे उल्लेख किया गया है । 'सूरसिंघ री वेल' में जयचंद से लेकर सूरसिंह तक की राठौड़ वंशावली का और 'अनोपसिंघ री वेल' मे आदिनारायण से लेकर अनोपसिंह तक की वंशावली का उल्लेख है ।

(४) वीर रस अंगीरस बनकर आया है । वीभत्स, रौद्र, और भयानक वीर रस के ही सहायक हैं ।

(५) वेलिकार चरित्र-नायक के समकालीन रहे हैं और स्वयं अपने नायक के सग युद्ध क्षेत्र मे भी लडते रहे है या युद्ध के समय उपस्थित रहे है ।

(६) इस साहित्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है । वयणसगाई का सर्वत्र प्रयोग हुआ है । छोटासाणोर अपने तीन भेदो—वेलियो, सोहणो, जुड़साणोर—में प्रयुक्त हुआ है । इतिहास की दृष्टि से इस साहित्य का बड़ा महत्व है ।

चारणी वेलि साहित्य : धार्मिक--पौराणिक

इसके दो भाग हैं। विष्णु संबंधी और शिव–शक्ति संबंधी। विष्णु संबंधी वेलि साहित्य दो रूपो मे मिलता है। कृष्ण विषयक और राम विषयक। शिव-शक्ति संबन्धी साहित्य के भी दो रूप हैं। शिव-विषयक और शक्ति विषयक।

सामान्य विशेषताएँ :

धार्मिक-पौराणिक चारणी, वेलि, साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(१) काव्य की कथा का आधार श्री मद्भागवत, विष्णु पुराण और शिव-पुराण रहा है। कवियो की दृष्टि कृष्ण, राम, शिव, रुक्मणी, पार्वती, और त्रिपुरसुन्दरी पर पडी है। कथा के विकास मे अलौकिक तत्वो और कथानक-रूढियो का प्रायः सहारा लिया गया है।

(२) कथा-प्रबंध मे जगह जगह वर्णनो ने स्थान घेर रखा है। अन्य वर्णनो के अतिरिक्त नख-शिख निरूपण, विवाह-प्रसंग, युद्ध-वर्णन और प्रकृति चित्रण के स्थल बड़े ही कवित्वपूर्ण और रम्य हैं।

(३) यहाँ जितने भी पात्र आये हैं वे प्रधानतः दैविक गुणो से सम्पन्न हैं। कृष्ण, राम और शिव के दो-दो पक्ष है। वे आदर्श-प्रेमी बनकर मानव-लीला करते है पर उनके परब्रह्म का स्वरूप भी कम आकर्षक नही। कथा के आदि और अन्त मे इनका ब्रह्मत्व फैला हुआ है तो कथा के मध्य मे लौकिक सद्गृहस्थ का रूप। स्त्री-पात्रों के भी दो रूप हैं। मानवी और देवी। रुक्मणी और पार्वती सौंदर्य और शील की मूर्ति के साथ साथ ब्रह्म की शक्ति भी है। त्रिपुर सुन्दरी देवी के रूप मे ही प्रगट हुई है। प्रतिनायक और खल-पात्र उप-स्थित होकर संघर्ष पैदा करते हैं। संघर्ष का अन्त पाणिग्रहण संस्कार, पुत्र-जन्म और दुष्टो के दमन के साथ होता है।

(४) कथा-प्रबंध (कृष्ण रुक्मणी री और महादेव पार्वती री वेलि) मे अंगीरस संयोग शृंगार है। दूसरा प्रमुख रस वीर रस है। जिसके सहायक बनकर ही वीभत्स, भयानक और रौद्र आये हैं। अन्य रसो की भी यथावसर अवतारणा की गई है। इन वेलियो के अन्त में शृंगार रस लौकिक धरातल छोड़कर धीरे धीरे भक्ति रस मे पर्यवसित हो जाता है। मुक्तक (गुण चारित्रिक

वेल, त्रिपुर सुन्दरी वेल) मे तो भक्ति की ही प्रधानता है।

(५) काव्य की भाषा प्रधानतः साहित्यिक डिंगल है। 'त्रिपुर सुन्दरी री वेल' बोलचाल की सरल राजस्थानी मे लिखी गई है। इसमे न वयण-सगाई का प्रयोग हुआ न 'वेलियो' छंद का।

जैन वेलि साहित्य : ऐतिहासिक

पात्र-दृष्टि से इसे दो भागो मे बाँट सकते है—(१) श्रमणाचार्य तथा श्रमण और (२) श्रावक।

सामान्य-विशेषताएँ :

इस साहित्य की सामान्य-विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की तरह यहाँ जितने भी पात्र आये हैं वे सब ऐतिहासिक है। ये पात्र प्रधान रूप से वेलिकारो के धर्माचार्य रहे है और गौण रूप से संघपति श्रावकादि ।

(२) इन वेलियो मे प्रायः धर्माचार्यों की पाट-परम्परा का निर्देश करते हुए कवि के गुरू-विशेष का जीवन-वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। सोमजी जैसे संघपति श्रावक भी श्रमण-कवि समय सुन्दर के वर्ण्य—विषय रहे है।

(३) इस साहित्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। यहाँ काव्यत्व गौण है इतिवृत्त ही प्रधान है। छंदो मे विविधता है। मात्रिक छंद-दोहा, सरसी, सखी, हरिपद—यहाँ व्यवहृत हुए है। 'सोमजी निर्वाण वेलि' तथा 'सव्वत्थ वेलि प्रबंध मे 'वेलियो' छद तथा वयणसगाई शब्दालंकार का प्रयोग हुआ है। 'सुजस वेलि' विभिन्न ढालो मे लिखी गई है।

जैन वेलि साहित्य : कथात्मक

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इसे दो भागो मे बाँट सकते हैं—पात्र-कोटि और तीर्थव्रतादि। पात्रो की पाँच कोटियाँ है—(१) तीर्थंकर (२) चक्रवर्ती (३) बलदेव (४) सती (५) अन्य महापुरुष। तीर्थ व्रतादिक दो रूप हैं—तीर्थ और व्रत।

सामान्य विशेषताएँ :

इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) कथानक सामान्यतः त्रिशष्ठिशलाका पुरुष, सतियो और अन्य महापुरुषो से सबंधित है । पर वेलिकार तीर्थङ्करो मे ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान महावीर स्वामी, सतियो मे राजमती और चंदनबाला तथा महापुरुषो मे रहनेमि, जम्बूस्वामी, बाहुबली, वल्कल चीरकुमार, स्थूलिभद्र और पृथ्वीचंद्र पर ही अधिक मुग्ध हुए है । इन पात्रो के अतिरिक्त तीर्थ (सिद्धाचल) तथा व्रत (कर्मचूर व्रत कथा) आदि को भी कथानक का विषय बनाया गया है । कथानक की रचना का आधार जैनियो के कर्म विपाक का सिद्धान्त रहा है । स्थल-स्थल पर पुनर्जन्मवाद, कथानक रूढियो और अलौकिक तत्वो का सहारा लिया गया है ।

(२) अपने धर्म के प्रति अडिग आस्था होते हुए भी अन्य धर्मो के प्रति इन कवियो की उदार दृष्टि रही है । धार्मिक सहिष्णुता का यह स्वरूप वस्तु और शिल्प दोनो में यथास्थल प्रगट हुआ है । वस्तु के अन्तर्गत कई पौराणिक नाम-वासवदत्ता, उदयन, सैरन्ध्री, कीचक, लाछलदे आदि आये है । शिल्प के अन्तर्गत छंद और लय पर लोक गीतो (विशेषकर ढालों) का प्रभाव है । इसका कारण शायद यह रहा है कि ये कवि अपने धर्म के नैतिक सिद्धान्तो के प्रचार के लिए जन–साधारण को आकर्षित करना चाहते थे ।

(३) यहाँ जो पात्र आये हैं वे सामान्य नही है । सभी प्रमुख पात्र राज-वर्ग से संबंधित हैं । उनमे विशेष सौन्दर्य, शक्ति और शील-वृद्धि है । नारी-चरित्र भी अपने मे महान है । देव-पात्र भी धरती पर बार बार उतरते है । वे प्रधान-पात्र की प्रेम-स्फुरणा मे भी सहायक होते है और संयम-धारणा मे भी । मोहग्रस्त नायक को प्रतिबोध भी देते हैं । मानवेतर पात्र भी कथा को मोड़ देते है । कही ये अपनी करूण-कातर स्थिति से सारे कथा–सूत्र को बदल देत हैं तो कही सती के शील की रक्षा करते हैं और कही सद्भावना मे अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं. खल-पात्र और प्रतिनायक अभिशापित होते है या पश्चाताप की आग मे तपकर निखर जाते है, संसार से विरक्त हो जाते है ।

(४) यह साहित्य साधारणतः प्रेम कथापरक है । सारा वातावरण श्रृंगार से सुवासित है जो अन्त मे आत्म-रति तथा ब्रह्म-रति का रूप ग्रहण कर लेता है । प्रेमोदय रूप-गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन या साक्षात् दर्शन से होता है । कही नायक प्रयत्नशील होता है तो कही नायिका । अधिकाशतः नायिकाएँ प्रयत्न-शील हैं नायक विरक्त हैं । उनकी विरक्ति को बदलने के लिए कभी जल-क्रीड़ा का आयोजन होता है, कभी हास-परिहास होता है, कभी नायिकाओ द्वारा कथा-संवाद सुनाये जाते हैं । नायक अनुरक्त हो उठते है पर किसी की मृत्यु, राज्य-

भोग की निरर्थकता या पशुओं की चीत्कार सुनकर उनकी प्रेम-भावना तिरोहित हो जाती है और विवाह संयम में बदल जाता है। शिव-रमणी उन्हें प्यारी लगने लगती है। वे शील से सगाई कर मुक्ति-वधू के साथ गठ-बन्धन बांध लेते हैं। नायिकाएँ भी संयम-मार्ग को अपना लेती हैं।

(५) सारा साहित्य प्रेम कथापरक होते हुए भी धर्म-भावना से आवृत्त और निर्वेद भावों से अनुस्यूत है। शान्त रस अंगीरस है। दूसरा प्रमुख रस शृंगार है। उसके संयोग और वियोग दोनों रूप व्यक्त हुए हैं। यह शांत रस की पीठिका बनकर आया है। वीर रस अन्य रसों में प्रधान है। यह भी शांत रस को ही उद्दीप्त करता है।

(६) इन-कथा-प्रबंधों में वर्णनों की प्रधानता है। रूप-वर्णन और प्रकृति चित्रण बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। रूप-वर्णन नायक और नायिका दोनों का किया गया है। नायिका के रूप-वर्णन में रूढ़िगत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है। इसे नख-शिख परम्परा का ही निर्वाह कहना ठीक होगा। प्रकृति-चित्रण के तीन रूप मिलते हैं। बारहमासा वर्णन, पखवाड़ा–वर्णन और आलंकारिक रूप। यहाँ प्रकृति दो काम करती है। शृंगार भावना को उद्दीप्त करती है और संयम भावना को पुष्ट करती है। संयम-भावना की पुष्टि के रूप में वह उपसर्ग-परीषह बनकर आती है। वर्षा, शरद् और ग्रीष्म का वर्णन इसी प्रसंग में किया गया है।

(७) इस साहित्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, सन्देह, भ्रांति आदि प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश अलंकार लोक-जीवन से चुने गये हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं जैन-दर्शन से संबंधित पारिभाषिक शब्द भी आये हैं।

(८) गेयता इस साहित्य का प्रमुख गुण है। अतः ढालों का ही विशेष प्रयोग किया गया है। लोक-धुनें इन्हें विशेष प्रिय रही हैं। यथावसर रागों का निर्देश कर दिया गया है। अन्य छंदों में दोहा, सरसी, हरिपद आदि प्रमुख हैं।

जैन वेलि साहित्य : उपदेशात्मक

वर्ण्य—विषय की दृष्टि से इसे ७ भागों में बाँट सकते हैं—गति विषयक, इन्द्रिय विषयक, गुणस्थान विषयक, भावना विषयक, कषाय विषयक, पूजा विषयक और अन्य।

सामान्य विशेषताएँ :

इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) जैनदर्शन निवृत्ति प्रधान दर्शन रहा है। उसने शरीर की अपेक्षा आत्मा को, इहलोक की अपेक्षा परलोक को और राग की अपेक्षा विराग को अधिक महत्व दिया है। अतः जैन कवियो ने भी जन-साधारण तक यही सन्देश पहुँचाया है। कभी मन को मोह माया से दूर हटकर शुभ-योग की ओर प्रवृत्त होने की चेतावनी दी है, कभी क्रोध-मान-माया-लोभादि कषायो का परित्याग कर क्षमा, विनय, सरलता और सन्तोष को अपनाने का उद्बोधन दिया है। कभी बारह-भावना भाने की ओर संकेत कर मनुष्य जन्म की दुर्लभता, संसार की नश्वरता और जीव-दया प्रतिपालना का महत्व समझाया है। कभी नरक गति की यातनाओ का तथा गर्भगत जीव की दारुण-कठिनाइयो का भयंकर चित्र खीचकर जीव को सिद्ध गति को ओर उन्मुख होने की प्रेरणा दी है, कभी इन्द्रियो की विषय-लोलुपता का वर्णन कर इन्द्रिय-निग्रह और मनोयोग की बात कही है। कभी जिन-प्रतिमा की पूजा कर हृदय को पवित्र बनाने का उपदेश दिया है।

(२) इन उपदेशो मे धार्मिक सहिष्णुता का स्वर मुखरित है। बीच बीच मे विषय-विवेचन की पुष्टि के लिए जो अन्तर्कथाएँ आई है उनमे जैन-कथाओ के साथ साथ पौराणिए कथाएँ भी हैं।

(३) इन कवियो का स्वर संत-कवियो की तरह विद्रोहात्मक भी है। स्थल-स्थल पर बाह्य-क्रिया-काण्डो, तीर्थ-व्रतादि का विरोध कर आतंरिक शुद्धता और मन की पवित्रता पर बल दिया गया है।

(४) इस साहित्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है।

लौकिक वेलि साहित्य :

यह साहित्य तीन रूपो मे मिलता है—ऐतिहासिक, जश्रुतिपरक और नीतिपरक। ऐतिहासिक लौकिक वेलि साहित्य को पात्र-दृष्टि से दो भागो में बाँटा जा सकता है—रामदेवजी और उनके भक्त तथा आईमाता और उनके भक्त।

सामान्य-विशेषताएँ :

इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(१) यह वेलि साहित्य सामान्यतः मौखिक रूप मे ही आईपथी लोगो द्वारा समय समय पर गाया जाता रहा है। और अब भी गाया जाता है।

(२) काव्य की कथा प्रायः ऐतिहासिक पात्रो से संबंधित है। धर्म-भावना की तीव्रता के कारण अलौकिक तत्वो एवं कथानक-रूढियो का समावेश हो गया है।

(३) प्रधान-पात्र वैदिक गुणो से सम्पन्न हैं। नारी चरित्र पुरुष चरित्र की अपेक्षा अधिक सशक्त, दीप्तिमान और कर्त्तव्य परायण है। प्रधान पात्र राजवर्ग से सबंधित हैं। अन्य पात्र निम्न वर्ग के—मेघवाल, कुम्हार, ढोली, भोमिया आदि—है। दोनो वर्गो मे भक्ति-समर्थक और भक्ति-विरोधक पात्र मिलते हैं। नायिका सामान्यत· विवाहित और भक्ति निष्ठ होती है। पड़ोसिन, सौत, सास, पति आदि उसकी भक्ति-भावना मे बाधक होते है। फलस्वरूप संघर्ष शुरू होता है। संघर्ष का अन्त भक्ति-भावना के जय-घोष के साथ होता है प्रति-नायक प्रायश्चित ही नही करते वरन् उसी भक्ति मार्ग मे दीक्षित होकर अपना जीवन सार्थक समझते है। खल-पात्र अभिशापित होकर दण्ड भोगते हैं। नायक-नायिका का जयजयकार होता है।

(४) इस साहित्य के रचनाकार स्वयं उच्चकोटि के भक्त रहे है और अपने आराध्यदेव के समकालीन ही नही वरन् उनके कार्या-कलापो मे भी भाग लेते रहे हैं।

(५) गेयता इस साहित्य का प्रमुख गुण है। भजनीक लोग रात्रि को आईजी के मंदिर के बाहर बैठकर इसे बडी श्रद्धा से समवेत स्वर मे गाते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वेलिकाव्य की धारा लगभग चार शताब्दियों तक निरन्तर बहती रही है। कभी उसने संयम का लोकोतर रस पिलाया तोकभी लौतिक शृंगार का आस्वादन कराया, कभी ऐतिहासित तत्वो को उभारा तो कभी लोक संस्कृति को निखारा।

———

वीर रसात्मक प्रमुख वेलि ग्रन्थ

राजस्थानी वेलि साहित्य प्रधानतः तीन धाराओं मे होकर बहा है—चारणी वेलि साहित्य, जैन वेलि साहित्य और लौकिक वेलि साहित्य। चारणी वेलि साहित्य के दो रूप हैं—ऐतिहासिक और धार्मिक–पौराणिक। जैन वेलि साहित्य के तीन रूप हैं—ऐतिहासिक, कथात्मक और उपदेशात्मक। लौकिक वेलि साहित्य के भी तीन रूप हैं—ऐतिहासिक, जनश्रुतिपरक और नीतिपरक। इनमे वीर रस का परिपाक प्रधानतः ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य मे हुआ है। सहायक रस के रूप मे वीर रस कतिपय जैन तथा लौकिक वेलि साहित्य मे भी मिलता है।

अंगीरस के रूप मे वीर रस निम्नलिखित वेलियो मे आया है—

रचना	रचनाकार	रचना-संवत्
(१) देईदास जैतावत रीवेल	अखो भाणोत	स० १६१३ के आसपास
(२) रतनसी खीवावत री वेल	दूदौ विसराल	सं० १६१४ के आसपास
(३) उदैसिंघ री वेल	रामा सादू	सं० १६१६ के आसपास
(४) चादाजी री वेल	वीठू मेहा दूसलाणी	स० १६२४ के बाद
(५) रायसिंघ री वेल	सादू माला	सं० १६५३ के आसपास
(६) राउ रतन री वेल	कल्याणदास महड़ू	सं० १६६४-८८ के मध्य
(७) सूरसिंघ री वेल	गाडण चोलौ	सं० १६७२
(८) अनोपसिंघ री वेल	गाडण वीरभाण	सं० १७२६ से पूर्व
(९) वीर जिन चरित्र वेलि	ज्ञान उद्योत	स० १८२५ के आसपास

सहायक रस के रूप मे वीर रस निम्नलिखित वेलियो मे आया है—

रचना	रचनाकार	रचना-संवत्
(१) रामदेवजी री वेल	संत हरजी भाटी	१५ वी शती का उत्तरार्द्ध
(२) रूपादे री वेल	सत हरजी भाटी	,,
(३) तोलादे री वेल	—	,,
(४) रत्नादे री वेल	तेजौ	१५ वी शती का अन्त
(५) लघु बाहुबलि वेलि	शातिदास	सं० १६२५
(६) क्रिसन रुक्मणी री वेलि	राठौड़ पृथ्वीराज	सं० १६३७-४४ के मध्य

(७) महादेव पार्वती री वेलि आढा किसना सं० १६६०-१७०० के मध्य
(८) रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि महेस दास १८ वीं शती का प्रारम्भ
(९) वीर गुमानसिंघ री वेलि — १८ वीं शती का अन्त
(१०) बाबा गुमान भारती री वेल चिमनजी कविया १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध

प्रस्तुत निबन्ध मे राजस्थानी वीररसात्मक प्रमुख वेलियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) देईदास जैतावत री वेल[1] —प्रस्तुत वेल बगडी के सामन्त देवीदास से संबंध रखती है। ये जोधपुर नरेश राव मालदेव के सेनापति पृथ्वीराज जैतावत के सहोदर कनिष्ट भ्राता थे। सं० १६१६ मे इन्होंने बिहारी पठानो को पराजित कर जालोर पर अधिकार किया था। इनके रचयिता बारहठ अखो भाणौत रोहडिया शाखा के चारण तथा बादशाह अकबर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम भाणा था जो जोधपुर के राव मालदेव के कृपा-पात्र थे। पाच वर्ष की अवस्था मे ही अखा के माता-पिता चल बसे। कहा जाता है कि तब मालदेव की राणी झाली स्वरूपदे ने इन्हे पाला-पोसा था। मालदेव के पुत्र उदयसिह इनके हमजोली थे। संवत् १६४३ मे जोधपुर के तत्कालीन राजा उदयसिह ने चारणो पर क्रोध कर समस्त चारण जाति को देश–निकाला दिया था। इसके प्रतिवादस्वरूप चारणो ने आउवा ठिकाने मे धरना दिया। इन्ही धरना देने वालो मे सुलह का मार्ग निकालने के लिए उदयसिह ने अखा को भेजा। अखाजी सुलह कराने की बजाय स्वयं धरने मे सम्मिलित हो गये। इस पर उदयसिह ने इन्हे कहलवाया कि इससे अच्छा तो कटार खाकर मर जाना था। इन्होने ऐसा ही किया।

२३ छन्दो की इस वेल मे देवीदास जैतावत के युद्ध-कौशल एवं वीर-व्यक्तित्व की अभिव्यंजना की गई है। देवीदास ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वीराज का बदला लेने के लिए मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन के साथ मिल कर जयमल पर (मेडते पर) आक्रमण किया था।[2] वि० सं० १६१३ में मालदेव की तरफ से

---

[1] इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, के ग्रंथाक १३६ (८) मे सुरक्षित है। लेखक ने इसे वरदा : वर्ष ३, अंक ४, में प्रकाशित कराया है।

[2] माडाया जु तै पृथीमल मागिण,
वसुधा ताइ साचा वाखाण।
माल कलोधर हीयौ मेड़तै,
तैं मालदे तणा मेल्हांण ॥ १२

हाजी खा को सहायता देकर हरमाड़ा गाव के पास उदयपुर के महाराणा उदयसिंह, बीकानेर के महाराजा राव कल्याणमल तथा मेड़ता-नरेश जयमल की सम्मिलित सेना को भी (देवीदास ने) पराजित किया था ।[1] देवीदास का व्यक्तित्व बडा जबरदस्त था । कवि ने बार-बार उसे 'अखैराज अभिनवा'[2] कहा है । उसे देख कर जैतसी का भ्रम हो जाता है । वह दल का शृंगार और देश तथा वंश का दीपक है । बादशाही सेना के लिए वह उस सिंह के समान है जिस पर रौद्ररूपी पाखर पड़ी हुई है ।[3]

(२) रतनसी खीवावत री वेल[4]— इसका रचयिता दूदो विसराल नाम का कोई कवि है । ७२ छन्दो की इस रचना मे एक ऐतिहासिक घटना—हाजी खा का पलायन तथा जैतारण-पतन का वर्णन है । अकबर बादशाह ने शेरशाह के सेनापति हाजीखां (जिसने अजमेर पर अधिकार कर रखा था) का दमन करने के लिए एक सेना भेजी । हाजीखा डर कर गुजरात की तरफ भाग गया और मुगल सेना ने जैतारण पर अपना फौजी अधिकार कर लिया । जैतारण की इस लडाई मे राठौड रतनसिंह खीवावत, राठौड किशनसिंह जैतसिंहोत आदि सरदार मारे गये ।[5]

वेलिकार ने जैतारण के युद्ध-वर्णन मे विषकन्या का विराट् सागरूपक बाधा है । मुगल सेना रूपी कुमारी को—जो अपने पूर्ण यौवन पर है—दुल्हिन बना कर तथा राठौड रतनसिंह खीवावत को दूल्हा बना कर कवि ने पाणिग्रहण संस्कार की मर्यादा का पूर्ण निर्वाह किया है । अन्त में युद्ध रूपी काम-क्रीड़ा-रत रतनसिंह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

मुगल सेना रूपी विषकन्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वह कामदेव के समान मतवाली है । उसमे विवाह करने का उत्साह भरा हुआ है ।

---

१ मिलि जैमिल राण कल्याण मेडतै, घणूं ज वंहता विरद घण ।
  बल छाडियौ तुहारे बोले, त्रिहुं ठाकुरे जैत तण ।। ११

२ अखैराज बगड़ी के मूल संस्थाधक थे । राव रिणमल का पौत्र तथा अखैराज का पुत्र पंचायण हुआ जिसका बेटा जैता हुआ, जिससे ये जैतावत कहलाये ।

३ दल नाइक अगड़ तुम्हारी देदा, कोइ न हाले अडस करि ।
  पाखर रौद्र लगै पतिसाही, प्रघट पंचाइण तणि परि ।। १७

४ इसकी हस्त लिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर(ग्रंथाक ६२)मे है ।

५ जोधपुर राज्य का इतिहास—प्रथम खण्ड, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृ० ३२१–२२ ।

वह नगाड़ो की गड़गड़ाहट के साथ मदमस्त हो जब चलने लगती है तब उनका यौवन उफनने लगता है—

रोस कसीय घूंमती रमतो,
चुंवती मदन महारस चील ।
हाली घड़ नीसांण हुबाए,
रिण पाखर करि नेवर रील ॥६

हाथी घोड़ा का आडम्बर उसके घूंघट का घेरा है। हाजीखा उसके आतंक से काप कर गुजरात की ओर भाग गया और अपने दूल्हेपन को सिद्ध न कर सका—

वीदपणौ अजमेर बिसारे।
खिसियौ ल्हिसीयौ हाजीखांन ॥६

पाणिग्रहण संस्कार को यो बिगडते देख कर मुगल सेना रूपी युवती विषम गति से जैतारण की ओर आई। उसने सोलह से दूने शृंगार सजे। तीक्ष्ण भालो की अणी ही उसके नाखून थे और तेज चमचमाते हुए कुंत ही कटाक्ष थे। दुश्मनो की सेना को नष्ट करने वाले आयुध ही उसके लिए सवा लाख हार थे।[1] इसी रूप पर मोहित होकर रतनसिंह ने शीशा डसने वाली तोपो के वक्र नेत्रो से प्रणय के इशारे किये, तलवार के रूप मे कुसुमायुध के पंचशरो का संधान किया, सेना की हुंकारो के मंगल गीतो के बीच सिर पर मौड़ धारण किया और मन में क्षत होने का अनुराग लेकर कृपाण की मेखला बाधे विवाह के नगाड़े बजवाये।[1]

१— विकट अणी नख कुंत वधारे, भुजि भलका भाला भालोड।
खापर फौज पाधरी खडिया, जैतारिणी ऊपरि जग जोड़ ॥१७
अरिघड दूण सुवालख आवध, सोलह दुंणि सजे सिणगार।
कुंत कबाण छुरी काछोली, मल्हपी गुरिज ग्रहे चक्रमार ॥ १८

२—सीहण डसण तण वयण नयण सिघ, धनष मदन सार पंच सुधूप।
रूप कियो तो ओपरि रतनै, रिम घडि नौव तेरह तस रूप ॥१९
अति दिन लगन महूरति ऊपडि, धवल मंगल दल हुंकलि धौड।
मीर घड़ा परणण कूमारी, मारु रैणि बाधीयौ मौड ॥२०
मन खत राग बंधालक मौजा, कटि मेखला कसीयै कुरवाण।
आवी मोर घड़ा ओपडाखी, निघसिते नेवरि नीसाण ॥ २१

पाखरो की पायल पहने, कराघातों का काकरण धारण किये[1], जड़ित जिरह की कंचुकी और कवच की साडी लपेट[2], नयनो के कटाक्ष बाण छोड़ती हुई, कवच कड़ियो को झकझोरती हुई, घूमर नृत्य करती हुई, बत्तीस लक्षणों से युक्त मुगल सेना रूपी विषकन्या रतनसिंह का वरण करने के लिए आगे बढी।[3] उसने सोने का सेहरा बाधा और तलवार से पाणिग्रहण किया। जैतारण के युद्ध मे चमकती हुई तलवारो ने तोरण बाधने की रस्म पूरी की[4] तो हाथी-दांतो के रूप में हँसती हुई मुगल सेना की विष-कन्या ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। योद्धाओ के मरने से अंगरहित अर्थात् अनंग होकर वह कामार्त्त हो उठी।

रावतों का सरदार रतनसिंह उसी दिन से सचमुच दूल्हा बना। उसका मौड़ आकाश के लिए स्तंभवत बन गया।[5] किले के लिए कोटस्वरूप किशनसिंह यशस्वी बराती सिद्ध हुआ।[6] ढाल रूपी थाल मे भाले रूपी अक्षतो से रतनसिंह को बधाया गया।[7] युद्धस्थल रूपी सेज पर गलबाही देकर रतनसिंह ने मीर कुमारी के साथ आनन्द-भोग भोगा।[8]

विधिवत् सभी वैवाहिक रस्मे पूरी की गई। शत्रुओ का शिरोच्छेदन करना ही कलश उतारना है। अत्यन्त गंभीर घावो को सहना ही मुँह दिखाना है। गिद्धो के पंखों का फैलना ही छत्र-चंवरो का सजना है। तलवारो की मुठभेड़

१—पाखर घोर बाजती पायलि, काकरण हायल चूडि कसि।

२—चीर जरद पाखर चंडाउणि काचू जिरह जडाव करि॥

३—नयण कटाक्ष बैण नीछरते, कसि विहु दिसि फेरती कडा।
उठि रयण परणेवा आई, घूमर कोधे मीर घड़ा॥२६॥

४—मंड है वियण सेहरा कामणि, कर गेवार माती किरिमालि।
ढूकी ढाल वेणि ढलकंती, तोरणि जैतारिणि रिणि तालि॥२७॥

५—रावत वीद नरिंद रतनसो, विरत दैति वीदवगि।
मोड़ मुगटि सिरि टोप माडीयै, लागे ओठियो अभिलगि॥

६—काला कोटि दुवाहा कमधजि, किसन अणवर रयण कन्है॥

७—उडीयण थाल आवधे आखे, अति प्रबहुलां हायले अनीद।
भलुके खगे ऊनगे भाले, बधाविजै रतनसी वीद॥३३॥

८—डसण सयण रतनसी दमंगलि, माथ गलोयलि भीच रहै।
धड़ आरति ऊतारै धरि, वरमाला किरिमाल वहै॥३४॥

से रुधिर के परनालो का बहना ही सिन्दूर का छिटकना है। छत्तीस प्रकार के शस्त्रो का संचरण ही छत्तीस प्रकार के व्यंजनो का रसास्वादन है। दोनो सेनाओ का परस्पर युद्ध करना ही वर-वधू का जुआ खेलना है।[1]

वर-वधू का समागम भी बड़ा विचित्र है। क्षत्रियत्व की रक्षा करने वाले रतनसिंह ने तलवारों के प्रहारों से मीर-सेना रूपी युवती की कंचुकी के कसने तोड़-तोड़ कर उसे रतिक्रीड़ा में परिश्रान्त कर दिया।[2] वह बेचारी अस्त-व्यस्त वस्त्रो को लेकर जा छिपी। रतनसिंह मुगल सेना रूपी विष-कामिनी के साथ संभोग-सुख मे इतना लवलीन हो गया कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। हाड़, मांस और रक्त चारो ओर फैल गया। सुअर, डाकणियां, भूत, प्रेत आदि इकट्ठे होकर आनन्द के साथ इनका भक्षण करने लगे। रतनसिंह ने वीरों को खंड-खंड कर, हाथियो को मार-मार कर इतना रक्त प्रवाहित किया कि सभी उसे पीकर तृप्त हो गये। वह इस संसार में अब नहीं रहा। वह तो मर कर स्वर्गलोक का स्वामी बन गया। देवता रतनसिंह को आशीर्वाद दे रहे हैं। अप्सराओ और सतियो की आत्माओ के साथ रमण करता हुआ वह वैकुंठ में निवास कर रहा है। भाला अब भी उसके हाथ में वीरता का उद्घोष कर रहा है।[3]

(३) उदैसिंघ री वेल[४]—इसके रचयिता रामा सांदू उदयपुर के महाराणा उदयसिंह के समकालीन थे। इसमें वेलिकार ने १५ छंदो में उदयसिंह की ही प्रशंसा की है। कवि के अनुसार उदयसिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावक है।[५] वह धर्मशास्त्रों का ज्ञाता, विष्णु का परम भक्त और काव्यानुरागी

१—देखिये छन्द संख्या ३१ से ४४

२—रिणवट खाग खत्रीवटि रतनै, घाइ मनाई मीर घड़ा।
  नोहां लीये तोड़ीया लाडै, कांचू लोमरा कसरा कड़ा ॥३४॥

३—रंभ झंकोल् विचालइ रतनौ, आतम वरँम सतीयाँ विवम्रंत।
  सूनर झलहल नै झंकारे, कूंतहयो वसीयउ वैकुंठ ॥६॥

४—इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर (ग्रंथांक १३६) में है।

५—ऊजम अंग अगाहि अडप जिम आमति, पौहवि न कोई एव सुपह।
  एकाएक अऊव एकाहवि, सिघ तणा परिकार सहि ॥१॥

है।[1] उसकी वाणी वैरियो के लिए भी मरस है। स्वामिभक्ति मे वह वट वृक्ष की तरह दृढ है।[2] आश्रित जनो के लिए अन्न-जल स्वरूप है। उसकी वृत्ति निर्मल, चित्त उत्तम और शरीर पवित्र है। वह छन्दशास्त्र का आचार्य तथा संस्कृत-प्राकृत का पंडित है। उसके समान दानी, ज्ञानी और अभिमानी इस संसार में दूसरा कौन है? संसार के सभी राजा उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं—'सब सेवै भूप्रवै सकल'।

(४) चांदाजी री वेल[3]—इसके रचयिता वीठू मेहा दूसलाणी दूसला के पुत्र या वंशज थे। इसमे राव मालदेव के यशस्वी सरदार तथा मेड़ता के राव वीरमदेवजी के चतुर्थ पुत्र चादाजी के वीर व्यक्तित्व की गौरव-गाथा गाई गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का बडा महत्व है। वेलि को पढने से ज्ञात होता है कि चांदाजी ने सोलंकियो के दात खट्टे किये थे।[4] अपने भाई जगमाल के साथ मिल कर अजैपुर (अजमेर) और रायपुर पर एक दिन मे अधिकार किया था।[5] फलौदी के रणक्षेत्र मे भाटियो का भ्रम दूर भगाया था। गुजरात की सेना का यश मिट्टी मे मिला दिया था। खिलाड़े के रणक्षेत्र में सुल्तान बादशाह की सेना का दमन किया था। मेड़ता के मणिखान के साथ दो माह तक युद्ध मन्थन किया था।[6] नागौर के खान (दौलत खाँ) के साथ मुकाबला कर चांदा ने अपनी वीरता प्रदर्शित की। इस लडाई मे वरसिंघ, सूरसिंघ, कान्हा, हपरा, अखा, सीहावत आदि भी बहादुरी से लड़े।

१—सूरति सत सील साच ध्रमसात्र विसन भगति अधिकार विमेक।
रूपक राग राजवट राणी, उदयसिंघ संजाणे एक ॥२॥

२—आखै तन अलीन मूक ऊवचर, वैरी है सरसौ वयण।
सु' साइवट तणौ सांगावत, भूपन कौ अनि नर भुवण ॥५॥

३—इसकी हस्तलिखित प्रति मोतीचंद खजाँची, बीकानेर के संग्रहालय मे है।

४—पहलोई सोलंकिया जाय पौहतो, निरंभय चंद वाधीयै नेत।
भागौ ते कीलणहर भिडंते, खाडा पाणि वणहटै खेत ॥२॥

५—घोड़ै दीह अजैपुर घोपहि, असुर घणा रायपुर उथालि।
एकै दीह उभै आखाड़ा, जीता चंद अनै जगमालि ॥४॥

६—मास बे महण मेड़तै मथीयौ, असंख कटक मेले अगियांन।
आंगमणि चादौ नह आवै, खार खचौ जीवै मणिखान ॥६॥

(५) रायसिंघ री वेल[1]—अनुमान है कि इसके रचयिता सांदूमाला रहे हो। ४३ छन्दो की इस रचना मे बीकानेर के महाराजा रायसिंह के बचपन और यौवन के साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन किया गया है। जिस अवस्था में अन्य राजकुमार कौडियो का खेल खेलते हैं, उस अवस्था मे (बाल्यावस्था मे) रायसिंह ने मुगल दरबार तक अपनी विजय-दुंदुभी बजवादी।[2] सात वर्ष की अवस्था मे उसका प्रभाव सातो द्वीपो पर्यन्त फैल गया तो आठवें वर्ष के प्रवेश ने उसे प्रसिद्धि का पात्र बना दिया। नवमे वर्ष का तेज पृथ्वी के नवो खण्डो पर छा गया तो दसवें वर्ष ने उसके साम्राज्य का विस्तार कर दिया।[3] दिल्लीनाथ अकबर तक उसकी प्रभाव गरिमा व्याप्त हो गई। बड़े बड़े राजाओ का गर्व चूर हो गया और उसके अश्व पर चढ़ते ही पृथ्वी की मर्यादा टूट गई। पन्दह वर्ष की अवस्था मे तो वह सुरताण की सेना से जा भिड़ा।[4]

वेलिकार ने बादशाह अकबर से रायसिंह की नाराजगी और गुजरात की लडाइयो की ओर भी संकेत किया है।

(६) राउ रतन री वेल[5]—इसके रचयिता कल्याणदास, मेहडू शाखा के चारण डिंगल के प्रसिद्ध कवि जाडा मेहडू के पुत्र थे। ये जोधपुर के महाराजा गजसिंह के कृपा-पात्रो मे से थे। १२३ छन्दो की इस रचना मे बूंदी के राजाओ की वंशावली (देवीसिह से लेकर चरित्र-नायक रतन सिंह तक) प्रारंभ मे देकर रतनसिंह की गुणगाथा गाई गई है। वह भीम के समान वीर, कर्ण के समान दानी तथा विक्रम के समान दयालु था। शारीरिक पराक्रम में भी वह किसी से पीछे न था। कंवरपदे मे ही काशी के समीप चरणाद्रि स्थान पर उसने शरीफ खा का वध किया था। इस युद्ध का वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। युद्ध-स्थल का एक चित्र देखिए:—

१—इस की ह० प्रति अनूप सं० ला०, बीकानेर, (ग्रंथाक १२६ (क) मे सुरक्षित है।

२—जिण वेस प्रवेश करे रायजादा, कवडी मंडवा करण।
वेस तेस सुरताण वदीता, रासे जिता महा रिण ॥२॥

३—सतदीप रायसंघ वरस सात मे, परबत कुल आठ में प्रवेश।
नवमैं वरस वजवजीयौ नवखंड, दसमे वरस वंदे देस ॥३॥

४—रायकुमार राजथंभ रतन रायसंघ, सुरताणी फौजा सरस।
असपत घड़ा लोहड़े आडो, वाजीयौ, पनरहमैं वरस। ॥६॥

५—इसकी हस्तलिखित प्रति साहित्य संस्थान, उदयपुर मे हैं।

धारू जळधार बलकि सिरिधड धड़,
बळ वळ किरि बादब मे बीज।
ऊलळ छंट रयण ओवड़ीयौ,
भूतल खळ रहीया रत भीज॥

रतन की वीरता का वर्णन आलंकारिक शैली मे किया गया है। वह अपनी धाँक से समुद्र को हिला देने वाला है। 'मारे हीलोले महण'। पृथ्वी पर आसमान टूट पड़े तो उसे कोई चिन्ता नही—

इळ माथे त्रूटि पड़े जो अंबर,
कोई अनि वीर न धीर करै।
नरवद हरा तणौ जगि निहंचौ,
र जीवतौ करगि धरै॥

उसमे ताकत इतनी कि—

मेर उपाड़ि भाड़ि पल माहीं,
अळग धरै रयण असहाय।

यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्र भी ग्रहण के समय उसके आगे दीन बन कर सहायता के लिए प्रार्थना करते है—

सूरिज ससि करै पुकार रयण सौ, ग्रहण अनथां जेम ग्रहै।
बिजड़े राउ तणा ऊपर बळि, राह तणौ डर न क्यों रहै॥

वह इतना वीर और साहसी है कि—

काळांनल भौज तणौ कांधाळो, मछराळौ सूंडाळौ भार।
दताळां सूंडाळा दोमभि, गळा ले मडे गुंजार॥
कूंभाथळ फौड़ै ओड़ै कांधा, मोड़ै नी जोड़ै गजमार।
कुण रौड़ै जोड़ै कांथाल, वीछोड़ै निण खूटी वार॥

काव्य मे युद्ध-वर्णा-रूपक सुन्दर बन पडा है। सग्राम-स्थल नदी, दोनो सेनाएँ नदी के दो किनारे और रक्तधार जलधारा तथा रतनसी बादल—

सलिता संग्राम सुतट दोइ सेना, गति जळ रुहिर लहर गजगाह।
करपै मीन चीहूर मै काभी, वह धार अद्भुत मेवाह॥

इसी प्रसंग को इस ढग से आगे बढाया है कि वीभत्स दृश्य भी रम्य बन गया है—

"पल पंक फेण धज उसनी पड़िया, कूरम तुरस टोप सिर कोडि।
चड कर घनख आवरत वणीया, जरद पड़े ओहाळां जोड़॥

मकरा मय घड़ा हंस हंसा मै, बग मै ग्रीध मोर महसाद ।
पलचर रातल दादुर पंखी, साथ अनेक भयानक साद ।।
मातंग कमळ सिर नान्हा मोटा, पड़ीया कण माळा पांस ।
आहंनीके जम अर बिदां वणीया, तरण खत्री मै वांस ।।
पणिहारि सकति माली ऊमापति, करिवा कमळ माळ चै काम ।
नव गति अछर हूर तिणि नदि चै, वरण मरण जळ तट मे-वाम ।।"

(७) सूरसिंघ री वेल[1]—इसके रचियता गाडण चोला (जिसे चौयजी भी कहा जाता है) सूरसिंह के राज्याश्रय मे थे । ३१ छन्दो की इस रचना मे सूरसिंह के पूर्वजो का वर्णन कर विविध उपमानो के साथ सूरसिंह (बीकानेर के महाराजा) की अन्य राजाओ के साथ तुलना की गई है जिसके कतिपय अंश इस प्रकार हैं—

(१) अरहट अवर पह इन सर गिरयन, मेर महण घण सूरजमाल ।
(२) धरपति अवर जोवता मणधरि, सूर विरद घण सहस-फण ।
(३) अधिपति अवर मदार ईखता, खेड सुपह खित सागर खीर ।
(४) जल नदि अवर अवर नर जामलि. जगि सूरजमल गंग जळ ।
(५) तार कथीर काच अन भूपति, हेम हीर नग जैतहर ।
(६) ससार प्रसाद वाद पारिख सुज, फेर पखै जोवतां फेर ।
पह कमठाण थभ पह बीजा, सूरकलस धज तासमेर ।।
(७) पंख वग संख वीना बीजा पह, सूरगरू है सवस सुध ।।

(८) अनोपसिंह री वेल[2]—इसके रचयिता गाडण वीरभांण बीकानेर के महाराजा चरित्रनायक अनूपसिंह के समकालीन थे । ४१ छन्दो की इस रचना में अनूपसिंह की कीर्तिगाथा तथा आदिनारायण से लेकर अनूपसिंह (काव्यनायक) तक की वंशावली वर्णित है । कवि के कथनानुसार अनूपसिंह अमिट त्यागी और तलवार का धनी है ।[3] उसका तपोपुंज व्यक्तित्व सूर्य की तरह है जिसके उदित होते ही शत्रुरूपी तारे अस्तित्वरहित हो जाते हैं ।[4] वह याचको के लिए

---

१ इसकी हस्त० प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर (ग्रंथाक १२६) मे है ।
२ इसकी हस्त० प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर (ग्रंथांक १२६) मे है ।
३ आनौ इमट त्याग नित ईखा, तिजड़ साहियै करण तण ।
४ उदियौ जेम अरक वडै वंस ओपम, उडणि अरहर भाजि अंधार.

आश्रयस्थल[1] एवं कवि रूपी चकवो के लिए किरणमाल है।[2] प्रतिज्ञापालन मे पाडवो की तरह, गति और शत्रु-विनाश मे हनुमान की तरह, सयम मे यति गोरख की तरह और सत्यवादिता मे युधिष्ठर ती तरह है।[3] स्त्रियो के सम्मुख वह समुद्र की तरह प्रशान्त और गंभीर है तो अपने प्रभाव-प्रभुत्व मे हिमालय की तरह उन्नत।[4] वह अनाथो का नाथ तथा निर्बलो का बल है।[5]

(६) वीर चिन चरित्र वेलि[6]—इसके रचयिता मुनि श्री ज्ञानउद्योत तपागच्छीय पुण्यसागर के शिष्य ज्ञानसागर के शिष्य थे। इस रचना मे जैनियो के २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर के 'वीरत्व' को प्रकट किया गया है। दीक्षा लेने के बाद बारह वर्ष तक छद्मावस्था मे रहकर महावीर ने तपश्चरण काल मे विभिन्न उपसर्गो एवं परीषहो का[7] समभाव पूर्वक सामना किया था।

---

१ जाचक ओढम साहियै जड लग।

२ कवि चकवा नै किरणाल्।

३ पह पगे करगे पाडव पिण, पहुँचि हणू किलै वलि पात।
 जति गोरख जुजिठल सच जीहा, हयवर व्रवण हिरन बड हाथ।

४ सहजा भामरणै संपेखित सायर, ऊंचाई परवत अधिकार।

५ नाथण अनाथ अर निबला वल कुंवर।

६ इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, मे है।

७ (क) **वर्षा**–लाई ध्यान की तारी, वन मे ठाढे उपशमंधारी।
 मेघ घटा चढ़ी आई, पवन की झकोर झूझे झकलाई।
 झूकलाई पौंन झकोर चिहुदिसि, दमक दाखै दामिनी।
 दादुर चातुक मोर रव थै, पीरी विरही कामिनी।
 तिणै समे वीरो रहै धीरो, जलद परीसह सवि सहे।
 अहो अहो अहो अहो मतिवर धन्य तुझ परि, अचल् भूधर नवि रहे।

(ख) **शीत**–तिम शीत कालें सीत सबलो, वायु वाह भुंखरा।
 हिम पडल जोरें वोरें वोरें, हरित वन जिम झाखरा।
 वरत सून तपन तबोल तरुणी, तूलीका घण आदरे।
 तिणें समे वन गिरी शीत देसें, स्वामी अवावड गुण वरै ॥

(ग) **ग्रीष्म**–जिण कालि रूय जडि ताय तडका, शृंग फाटे मृग तणा।
 सर वापी कूप निवाण नदिया, सुस्क दीसे अति घणा ॥
 घनसार मिश्रित सरस चन्दन, सजल् वन आदरे।
 तिणें समे जिनवर अमित गुणधर, तपन तापै तप करें ॥
 इम सर्व काले विसम परीसह, भूमि परिसंध सही।
 इत्यादिक पडि वर्जित, निकामी अपरीग्रही ॥

आत्मा की यही वीरता प्रदर्शित करना कवि का उद्देश्य रहा है।

उपर्युक्त जिन आलोच्य ६ वेलियो मे वीर रसात्मक भावनाओ का संचरण हुआ है। उनमे 'रतनसी खीवावत री वेल' तथा 'राउ रतन री वेल' ही विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शेष वेलियो मे वीर रस का प्रसार प्रशस्ति तक ही सामान्यतः सीमित रहा है। विस्तार-भय से सहायक रस रूप में वीर-रस जिन वेलियो मे प्रयुक्त हुआ है उनका उल्लेख भर किया जा सका है।

'क्रिसन रुक्मणीरी वेलि' में

श्रृंगार, शील एवं अध्यात्म का अद्भुत समन्वय

पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के पुत्र और राव जैतसी के पौत्र थे। उनमे एक ओर मरु-हृदय को स्निग्ध करने वाली प्रेम की अन्तः सलिला प्रवहमान थी तो दूसरी ओर मारू बाजे की गुरु-गंभीर उद्घोषणा को जन्म देने वाली वीरत्व व्यंजिनी दर्पमयी धडकन थी। परम सुन्दरी सहृदया लालादे के अकाल-निधन हो जाने पर जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या चम्पादे से पुनर्विवाह कर रूप और सौंदर्य के साथ साथ काव्यामृत का पान इस कवि ने किया था तो अकबर के राज दरबार मे रहकर भी महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व को, उनकी मान-मर्यादा एवं कुल परम्परा को इस आजादी के दीवाने ने सुरक्षित रखा था। यह महाकवि सेवक होकर भी स्वामी से महान था, पराधीन होकर भी स्वाधीन भावो का आदर्श था, मरुवासी होकर भी रसिकता का सजल मेघ था। वीर, शृंगार और भक्ति की त्रिवेणी बहाकर हृदय-वेलि को पल्लवित, पुष्पित और फलवित कर, इस क्रान्तदर्शी ने 'वेलिक्रिसन रुक्मणी' रूप 'पाचवे वेद' की सृष्टि की।

वेलि मे कृष्ण और रुकमणी की प्रणय एवं विवाह कथा का निबन्धन है। मंगलाचरण के बाद ही कवि ने शृंगार रस प्रधान काव्य मे स्त्री-वर्णन को प्राथमिकता देना ही कुल परम्परा समझा :—

'सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा, सुकवि अनेक से एक सन्थ ।
ओवरणण पहिलौ कीजै तिणि, गूंथियै जेणि सिंगार ग्रन्थ' ॥ ८ ॥

दक्षिण दिशा मे विदर्भदेशान्तर्गत कुन्दनपुर नामक नगर मे भीष्मक राजा राज्य करता था। उसके पाँच पुत्र (रुक्मि, रुक्मबाहु, रुक्माली, रुक्मकेश और रुक्मरथ) और एक पुत्री रुक्मणी थी। वह लक्ष्मी का अवतार थी। बाल क्रीड़ा करती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो मानसरोवर मे कोई मराल-शावक तैर रहा हो या मेरु पर्वत पर दो दल वाली सद्यः उत्पन्न स्वर्ण लतिका लहरा रही हो —

'रामा अवतार नाम ताइ रूषमणी, मान सरोवरि मेरु गिरि।
वालकति करि हंस चौ बालक, कनक बेलि विहु पान किरि'॥ १२॥

इस बालिका का बचपन विभिन्न बाल-लीलाओ मे व्यतीत होने लगा। शारीरिक विकास इस द्रुत गति मे होने लगा कि अन्य बालिकायें जितना एक वर्ष मे बढती थी उतना यह एक मास मे और अन्य जितना एक मास मे बढती थी उतना यह एक पहर मे, बत्तीस लक्षणो से युक्त यह राजकुमारी गुडियो मे मनोरंजन करने लगी —

अनि वरिस वधै ताई मास वधै ए, वधै मास ताइ पहर वधन्ति।
लखण बत्रीस बाल लीला मै, राजकुंअरि ढूलडी रमन्ति'॥ १३॥

इस प्रकार खेलते-कूदते, सखियो के साथ हंसते गाते, भोला बचपन धीरे धीरे खिसकने लगा और चपल यौवन शनैः शनैः आगे बढने लगा। यह वयः संधि की अवस्था नारी जीवन की ऐसी अवस्था है जिसका चित्रकार पूरा चित्र नही उतार पाता, कवि पूरा सौन्दर्य नही निरख पाता। न मालूम कितने 'गही गही गरब गरूर' चित्रकार 'कूर' बन गये। रूप देखकर किसी को स्तंभ होता तो हाथ ही रूक जाता, कम्प होता तो रेखाएँ टेढी–मेढी हो जाती (और अगर केमरा होता तो शायद जड़ता के कारण वह नीचे गिर पडता) स्वेद होता तो चित्र का रंग ही फीका हो जाता और ज्योही चित्र बनाकर चित्रकार नायिका से मिलान करता कि उसका क्षण क्षण परिवर्तित रूप चित्र मे विभेद डाल देता और चित्रकार बेचारा आश्चर्यान्वित होकर 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया' की दुहाई देता। इसीलिए हैरान होकर शृंगारी कवि बिहारी को लिखना पडा—

'लिखन बैठि जाकी छबी, गही गही गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर'॥

पर हमारा कवि तो अध्यात्म का सम्बल लेकर काव्य पथ पर चल पड़ा :—

सैसव तनि सुखपति जोवण न जाग्रति, वेस संधि सुहिण सुवीर।
हिव पल पल चढतौ जि होइसै, प्रथम ज्ञान एहवी परि॥ १५॥

शैशव मे यौवन की सुषुप्ति होती है, जागृति नही पर वयः संधि मे यौवन की स्वप्नावस्था होती है सुषुप्ति नही। कितनी सटीक और सार्थक बात कवि ने कही है। वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव की चार दशाएँ हैं। (१) जागृत (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति और (४) तुरीय। जागृत अवस्था ज्ञान की

वह अवस्था है जिसमे काम अर्थात् इच्छा वर्तमान रहती है। स्वप्नावस्था वह
अवस्था है जिसमे न तो पूर्ण अज्ञान ही रहता और न जागृति-बोध ही। सुषुप्ति
वह अवस्था है जिसमे पदार्थ-बोध तनिक भी नही रहता। यह अवस्था प्रगाढ
निद्रा की अवस्था है। कवि ने यहाँ पर शैशवावस्था को यौवन की सुषुप्ति
अवस्था इसलिए कहा है कि जिस प्रकार सुषुप्ति मे जीव को परब्रह्म का ज्ञान
नही होता उसी प्रकार शैशवावस्था मे यौवनागम का ज्ञान नही होता। वयः
संधि स्वप्नावस्था का काल है। जिस प्रकार वयः संधि काल मे यौवनागम
की आहट का मन्द स्वर सुनाई तो पड़ता है पर स्पष्ट नही। उसी प्रकार स्वप्न
मे भी न जागृति रहती है न सुषुप्ति। यौवन जागृतावस्था है जब उसे स्पष्ट
बोध हो जाता है। तुरीय अवस्था का प्रयोग इसलिए नही किया गया कि
कवि को उसमे प्रयोजन नही है।

शृंगार और अध्यात्म की यह मिली जुली अनुभूति कवि की उर्ध्वगामिनी
चिन्तना, मनोहारिणी कल्पना एवं मौलिक सूझ-बूझ की द्योतक है। विद्या-
पति के वयः संधि वर्णन मे यह आध्यात्मिकता कहाँ[1]? बिहारी के वैभव-
विहार मे यह सात्विकता कहाँ? विद्यापति की वयः सधि मे शैशव-यौवन
एक रंग हो गये हैं तभी तो दोनो नेत्र कानो की राह पकड लेते हैं। नायिका
की वचन-चातुरी और मुस्कराहट क्या है मानो चाद धरती पर उतर
आया हो —

'सैसव जीवन दुहु मिलि गेल।
स्त्रवन क पथ दुहु लोचन लोल॥
वचन क चातुरि लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥'

मुग्धा के शरीर मे ऐसा कामदेव प्रविष्ठ हुआ है जो निद्रा मे जाग तो गया
है पर जिसने अभी तक आँखें नही खोली हैं, 'जागल मनसिज मुदित नयान'।
पृथ्वीराज की नायिका को यौवनागम का ज्ञान इसलिए हुआ कि 'हिव पल पल

---

१ :— विद्यापति के इस बाह्य संसार मे भगवद् भजन कहाँ? इस वयः
संधि में ईश्वर से संधि कहाँ? सद्यः स्नाता मे ईश्वर से नाता कहाँ? अभिसार
मे भक्ति का सार कहाँ? उनके पदो मे वासना की सामग्री है, उपासना की
साधना नही, उनसे हृदय मतवाला हो सकता है, शान्त नही।

—डॉ० रामकुमार वर्मा

चढती जि हौइसै' पर विद्यापति की राधा तो 'मुकुर लई अब करई सिंगार' यही नही वह तो निर्जन स्थान मे अपने नवप्रस्फुटित उरोजो को देखकर प्रसन्न हो उठती है—

'निरजन उरज हेरए कत बेरि ।
हसइ से अपन पयोधर हेरि ॥'

वहाँ सात्विकता एवं संयम-शील का चरम आदर्श लेकर रुकमणी हमारे सामने आती है जिसे माता-पिता के सम्मुख आँगन मे घूमते फिरते 'काम बिराम छिपाडण काज' भी लज्जित होना पड़ता है । इस नवीन प्रकार की लज्जा से यौवन का आगमन सूचित होता है ऐसा समझकर वह लज्जा करने मे भी लज्जित होती है 'लाजवती अंगि एह लाज विधि, लाज करन्ती आवै लाज ।' फिर भला उसमे इतना साहस कहाँ कि वह यौवन से जवाबतलब कर सके । प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कोमा की तरह वह कह सके कि—

'यौवन तेरी चंचल छाया ।
इसमे बैठ घूंटभर पीलूं जो रस तू है लाया ।
मेरे प्याले मे मद बनकर कब तू छली समाया ।
जीवन-वंशी के छिद्रों मे स्वर बनकर लहराया ।
पल भर रुकने वाले ! कह तू पथिक कहाँ से आया ?'

पर उसके हृदय मे शाति कहाँ ? उसके बाल्यकाल का साथी बचपन आज उससे विदाई ले रहा है । वह उसे किस प्रकार विदाई दे । उसके मुख से बोल नही निकल पा रहे हैं, उसके पाँव 'सी ऑफ' करने के लिए स्टेशन की ओर बढ नही पा रहे हैं । उसे ऐसा महसूस हो रहा है कि वह—

'सिमिट रही सी अपने में,
परिहास गीत सुन पाती है ।' —प्रसाद

क्योकि यौवन आ रहा है इसीलिए तो—

'छूने मे हिचक, देखने में
पलके आंखों पर झुकती है,
कलरव परिहास भरी गूंजे,
अधरों तक सहसा रुकती है।'

—कामायनी : प्रसाद

वह करे भी तो क्या करे ? इसीलिए पृथ्वीराज ने इतना ही लिख दिया—

'जम्प जीव नही आवती जाणे, जोवण जावणहार जण ।
बहु बिलखी वीछड़ती बाला, बाल संघाती बालपण' ॥१७॥

कितनी स्वाभाविक व्यंजना है । अनुभूति का तीव्र भावालोक पद पद में व्याप्त है, घरेलू पारिवारिक वियोग-मिलन की सहज भाव मुद्रा है । ऊपर से भावना को थोपना नही पड़ा । बड़े से बड़े रूपक और उत्प्रेक्षा की सिद्धि कवि ने अलंकारो के बिना भी करदी । बिहारी ने नायिका के शरीर मे 'ताफना रंग, को दीप्ति देखी है क्योंकि—

'छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग ।
दीपति देह दुहूनु मिलि, दिपति ताफता-रंग' ।

विद्यापति की दृष्टि युद्ध-रूपक पर पडी । उन्हे तो शैशव और यौवन मे युद्धारम्भ होते दिखाई दिया 'दुहु दल-बले दन्द परि गेल' । कभी यौवन का पल्ला प्रबल होने से नायिका अपने केशो को सवार कर बाधती है और वक्षस्थल को खोल देती है तो कभी शैशव का पल्ला प्रबल होने से अपनी वेणी को खोल डालती है और अंगो को लज्जावश ढक लेती है—

कबहु बांधय कच कबहुँ बिथारी ।
कबहुँ झापय अंग कबहु उघारि ।'

शैशव–यौवन को इस प्रकार लडते देख कामदेव नरेश ने अज्ञात-यौवना सुन्दरी के शरीर मे प्रवेश कर अपना आधिपत्य जमा लिया । अमेरिका के प्रेसिडेन्ट की तरह 'स्पाइॅल सिस्टम' (Spoil-system) का अनुयायी बनकर कामदेव राज्य कर्मचारियो मे परिवर्तन करने लगा । अलग अलग व्यक्तियो के (अंगो) को भिन्न २ 'पोर्टफोलियो' दे दिये गये । कटि कि गुरुता नितम्बो को दे दी गई । (यह इस प्रकार किया गया कि कटि को क्षीण करके उसके सार से दूसरे नितम्बों की रचना की गई)[1] प्रकट हास्य और अप्रकट कुच के 'ट्रान्सफर' एक

---

१ :—अपने तन के जानिके, जोवन नृपति प्रवीन ।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब को; बड़ो इजाफौ कीन ।
नव नागरि तनु-मुलक लहि, जोवन आमिल जोर ।
घटि बढि ते बढि घटि रकम, करी और की और ।
ज्यौ ज्यौ जोवन-जेठ, दिन-कुच मिति अति अधिकाति ।
त्यौ त्यौ छिन छिन कटि-छपा, छीन परति नित जाति ।
—बिहारी

दूसरे के स्थान पर कर दिये गये। अब हास्य अप्रकट हो गया और कुच प्रकट हो गये। इसी प्रकार चंचल चरणो और स्थिर नेत्रो के 'पोर्टफोलियो' भी बदल गये। अब चरण स्थिर हो गये और नेत्र चंचल हो उठे।

'कटि क गौरव पाओल नितम्ब।
एक क खीन अओक अवलम्ब।
प्रगट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रगट अब तन्हिक लेल।
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचन क धैरज पद तल जाव॥'

पृथ्वीराज यद्यपि राजकुमार थे पर उन्हे कामदेव का नरेश-रूप लुभा नहीं पाया। इसलिये उन्होने शैशव को शिशिर और यौवन को वसन्त रूप मे देख कर ही एक ओर हृदय को वासन्ती पवित्रता से भर कर ताजगी का अनुभव किया तो दूसरी ओर प्रकृति के प्रति भी अपनी स्वाभाविक अभिरुचि व्यक्त की। बचपन रूपी शिशिर के समाप्त होते ही यौवन रूपी वसन्त अपने सहायक गुण (सौंदर्य) गति चंचलता मति 'आनन्द' आदि को लेकर रुक्मणी के शरीर मे प्रकट हुआ।

'सैसव सु जु सिसिर वितीत थयौ, सहु गुण गति मति अति एह गिणि।
आप तणौ परिग्रह ले आयौ, तरूणापौ रितुराउ तिणि'॥ १६॥

प्रसाद ने भी 'कामायनी' के 'काम' सर्ग मे शैशव को शिशिर और यौवन को वसन्त के रुप मे देखा है। उनका जीवन-वन का वसन्त, रजनी के पिछले पहरो मे अन्तरिक्ष की लहरो मे कहता हुआ चुपके मे आता है—

'मधुमय वसंत जीवन वन के,
वह अंतरिक्ष की लहरो मे।
कब आये थे तुम चुपके से,
रजनी के पिछले पहरों मे।'

यौवनागम की सूचना या अनुभूति कुचो के बढने के साथ-साथ होती है। इसका वर्णन पृथ्वीराज, विद्यापति, बिहारी आदि कवियो ने पूर्ण तल्लीनता के साथ किया है। पृथ्वीराज मे सात्विक संयम है, विद्यापति मे मादक उत्तेजना है और बिहारी मे अफीमी उद्वेग। विद्यापति बाला के कुचो के क्रमिक विकास का चित्र खीचते हुए चार विकास-सोपान की बात कहते है—

'पहिल बदरि कुच पुन नवरंग।
नित दिन बाढए पिड़ए अनंग॥

से पुन भए गेल बीज कपोर।
अब कुच बाढल सिरिफल जोर॥

[यौवन के प्रारंभ मे कुच वेर फल के समान थे और फिर बढकर नारंगी के समान हो गये। और कामदेव कुच-वृद्धि के साथ २ अधिक पीडा देने लगा। जिस प्रकार बीज अंकुरित होने के पश्चात् क्रमशः बढते बढते पोर (वृक्ष की गांठ) बनता है उसी प्रकार कुच भी उसी के समान मोटे और दृढ हो चले। थोडे ही दिनो के बाद वे श्रीफल के समान हो गये] पर पृथ्वीराज इस प्रकार क्रमिक विकास बताकर वासना की गंध नही फैलाते, काम भाव को उद्दीप्त नही करते वल्कि वे तो उषा और रात्रि का सहारा लेकर रुकमणी के बढ़ते यौवन की सूचना दे देते है—

'पहिलौ मुख राग प्रगट थ्यौ प्राची, अरुण कि अरुणोद अम्बर।
पेखे क्रिरि जागिया पयोहर, सझ्का वंदण रिखेसर।'

(मुख की प्रारंभिक लाली प्रकट हुई, जैसे अरुणोदय के समय आकाश लाल हुआ हो। उसे देखकर पयोधर ऐसे उठने लगे जैसे प्रातः काल को आया जानकर संध्या वन्दन के लिए ऋषि तत्पर हुए हों)

विद्यापति ने तो उरोजो के निकलने के स्थान को अरुणाम होते देखा है 'उरज उदय थल लालिमा देल' कामदेव द्वारा वक्षस्थल पर स्थापित मंगल घटो के रूप मे, सेव्य योग्य उच्च स्थान के रूप मे उनका पवित्रीकरण किया है "तडअओ काम हृदय अनुपाम। रोपल घट ऊचल कए ठाम।" केशो मे ढके हुए कुचो को ऐसे रूप मे देखा है जैसे किसी ने महादेव की सुवर्ण प्रतिमा को चंवर मे ढक दिया हो— उर हिल्लोलित चाचर केस।
चांपर झापल कनक महेस।'

पर वह पवित्रता नही झलक पाई जो पृथ्वीराज के ऋषि-रूपक मे। मुख-सौन्दर्य की लालिमा और कुचो की वृद्धि का एक साथ इतना वासनामय और अध्यात्म प्रधान वर्णन करने वाला कवि भारतीय साहित्य मे ही नही विश्व साहित्य में संभवतः दूसरा कोई नही हुआ। न तो यहा 'ब्रह्म' कवि की नायिका सी निर्लज्जता है कि कवि कह उठे—

'खेलत संग कुमारन के, सुकुमारि कछू सकुची जिय जिय मांही।
काम कला प्रगटी अंग अंग विलोकि हंसी अपनी परछाही॥
'ब्रह्म' भने न रहे उर अंचल, तू छिन ही छिन ढांपत काही।
डारति हो सिव के सिर अम्बर, ए तौ दिगम्बर राखत नाहि॥'

और न मतिराम की सी नायिका ही वह है कि—

'इतै उत सकुचत चितै, चलत डुलावति बांह
दीठि बचाय सखीन की, छिनक निहारति छांह ।।'

फिर भी यह नही कहा जा सकता कि कवि की दृष्टि रुकमणी के कुच-सौन्दर्य पर नही पड़ी। अवश्य पड़ी और वह अपनी सरसता के वशीभूत होकर फूट भी पड़ा—

कामिणी कुच कठिन कपोल करी किरि,
वेस नवी विधि वाणि बखाणि ।।
अति स्यामता विराजति ऊपर,
जोवण दाण दिखालिया जाणि ।।२४

कामिनी के कठिन कुच ऐसे हैं जैसे हाथी के कुंभस्थल और उनके श्यामल अग्रभाग ऐसे है जैसे मस्त हाथी की भाति यौवन ने मद दिखलाया है। कितनी सुन्दर कल्पना है। यौवन हाथी है, कुच कुंभस्थल और श्यामल अग्र भाग मद। साहित्य शास्त्रियो ने मद का रंग काला ही माना है। बड़े से बड़े अलंकारवादी कवि से भी कवि होड़ ले रहा है और बड़े से बड़े रसवादी को भी चुनौती दे रहा है। विद्यापति को सुवर्ण के रंगवाली देह मे कुच ऐसे प्रतीत हुए मानो सुवर्ण लता मे उत्तुंग मेरु उत्पन्न हुआ हो।

'पीन पयोधर दूबरि गता, मेरु उपज कनक-लता।'

कठोरता का वर्णन तो हो गया पर पृथ्वीराज जैसा सागोपांग विवेचन और यौवन की मादक मस्ती यहाँ कहाँ? विहारी ने भी कुच को गिरि माना है।[1] पर न तो वह रसज्ञ-रंजना और न वह पूर्ण भावाभिव्यक्ति।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि 'कामण मत्तगयंद ज्यो ऊभी मुक्ख मरोड़' से घिरा रहने पर भी पृथ्वीराज शृंगार की अध्यात्म भावना को पहचान सका। इसीलिये उसके वय: संधि वर्णन मे शैशव और यौवन की रंग रेली तो है पर वह प्रकृतिपरक उपमानो मे विमंडित है[2] काम चिन्हो से अनुरंजित

१—कुच-गिरि चढ़ी, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुंह चाड़।
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाड़ ।।—बिहारी

२—'पृथ्वीराज रासो' मे भी प्रकृति के उपमानो को लेकर वय.सधिका सुन्दर वर्णन किया गया है—
"ज्यो करकादिक मकर मैं। रति दिवस संक्राति।
यों जुव्वन सैसव समय। आनि सपत्तिय काति ।।
यो सरिता अरू सिंधु संधि। मिलन दुहून हिलोर।
त्यो सैसव जल सधि मे। जोबन प्रापत जोर ।।"

नही। श्रृंगार के साथ साथ वीर भावो को लपेटने वाले कवि तो कई हुए पर श्रृंगार और शील को साथ में रखकर चलने वाला कवि यह एक ही हुआ है, जिसके साथ चलने वाले यात्री श्रृंगार की उद्दाम मस्ती मे मतवाले भी बनते है और शील की गंध से पवित्र भी। उसकी नायिका नवोढ़ा है पर लज्जा से लज्जित होने वाली, मुग्धा है पर शील की साडी लपेटे, युवती है पर 'बाल संघाती बालपण' के वियोग से बेचैन। कवि की नायिका रुक्मण युगयुगो तक अपना सौन्दर्य अपनी सखियो के बीच उन्मुक्त कार बिखेरती रहेगी जैसे निर्मल आकाश मे तारिकाओ के बीच चाद अपनी स्निग्ध ज्योत्स्ना-'उडीयण वीरज अम्ब हरि'।

डिंगल-काव्य में वीर और श्रृंगार रस का अद्भुत मेल

कविता का प्रमुख उद्देश्य रस की अनुभूति कराना है। साहित्य शास्त्रियों ने नव रसों का ऐसा रसायन आयोजित किया है जिसका पान कर पाठक या दर्शक लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करता है। डिंगल-साहित्य का प्रारम्भ से ही विशेष महत्व रहा है। हिन्दी के आदिकाल का बहुत कुछ स्वरूप तो उसी के द्वारा निर्धारित किया जाता है। डिंगल राजस्थान की भाषा है और राजस्थान की धरती वीरप्रसवा रही है। कर्नल टॉड के शब्दों में "There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae, and scarcely a city that has not produced is Leonidas" राजस्थानी कवि तलवार और तूलिका के धनी रहे हैं। राजस्थान माता की मूर्ति यदि बनाई जाए तो उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे में वीणा देना ठीक होगा।[1]

डिंगल-भाषा स्वभाव से ही ओजप्रधान होने के कारण वीर रस के लिए विशेष उपयुक्त है पर यह नहीं माना जा सकता कि वह श्रृंगार रस के अनुपयुक्त है। पृथ्वीराज ने 'वेलि-क्रिसन रुकमणी' में श्रृङ्गार रस का सुन्दर वर्णन कर यह प्रमाणित कर दिया है कि डिंगल-भाषा जितनी वीर रस के अनुकूल है इतनी ही श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त। यह सही है कि डिंगल-कविता का अधिकांश भाग वीर रस से ओत-प्रोत है। इसका कारण यही है कि ये कवि वीर-भूमि में पैदा हुए थे, वीरता के वातावरण में पले थे और स्वयं योद्धा थे। हिन्दी और संस्कृत की वीररसपूर्ण कविताएँ रणांगण की कटाकटी एवं कोलाहल से दूर किसी शान्त वातावरण में लिखी गई थी, इसीलिए उनमें वह मूर्तिमत्ता और वास्तविकता नहीं है। केवल बाहरी हावभावों का वर्णन है हृदयस्थ गम्भीरतम भावों का मनोविश्लेषण नहीं। डिंगल की वीर रस की कविता में एक विशेषता और भी पाई जाती है। संस्कृत के कवियों ने स्त्रियों को श्रृंगार रस के आश्रय-आलम्बन के रूप में ही विशेष करके ग्रहण किया है और वीररस के लिए अनुपयुक्त समझ कर उनकी बड़ी उपेक्षा की है। वे दिन रात अपने चरित्र-नायकों के पीछे ही लगे रहे और कभी एक क्षण के लिए भी

---

[1]—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—वीर सतसई

पीछे मुड़ कर यह न देखा कि युद्धार्थ गए हुए वीर नायक की अनुपस्थिति मे उसकी वीरपत्नी की घर पर क्या दशा है ? लेकिन डिंगल के कवि उन्हें न भूले।[1] यही कारण है कि डिंगल कवियो ने ऐसी कविताओ का सृजन किया जिनमे वीर और शृंगार दोनो रसो का अद्भुत मेल हो गया है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह माना गया है। उत्साह को उत्तेजित करने मे शृंगार रस के स्थायी भाव रति का भी विशेष हाथ रहता आया है। यही नहीं वीर गाथा काल मे तो शृंगार-पक्ष की प्राप्ति के लिए ही वीर भावनाओ की अभिव्यक्ति हुई है। संयोगिता के रूप पर मोहित होकर पृथ्वीराज ने रण भेरी बजाई। 'जाहि की बिटिया सुन्दर देखि, ताहि पै जाय धरे हथियार' के पीछे सभवतः यही दर्शन है। और इसी का फल है कि शृंगार और वीर दोनो रस हाथ मे हाथ मिला कर बढे हैं।

चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत 'पद्मावती-समय' मे इसकी झलक दी है। पद्मावती का रूप चित्रण—

"मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय"
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय"

कर गौरी और पृथ्वीराज के युद्ध का वर्णन किया है। दूत से सन्देशा सुनते ही पद्मावती इतनी प्रसन्न होती है कि कामदेव की सेना-सी सज जाती है :—

"सन्देस सुनत आनन्द नैन,
उमगोय बाल मनमथ्थ सैन।
तन चिटक चीर डार्यो उतारि,
मज्जन मयक नव सत्त सिंगारि।
भूषन मंगाय नख- शिख अनूप,
सजि सैन मनौ मनमथ्थ भूप।"

सेना के सजने के मूल मे वीर भावना काम कर रही है जिसका आधार प्रिय-मिलन है।

वीर और शृंगार रस को एक ही छन्द (कुण्डलिया) मे गूंथने का कमाल दिखाया है ईसरदास बारहठ ने अपनी लोकप्रिय कृति 'हालांझालां रा कुण्डलिया' में। इस कृति मे हलवद-नरेश झाला रायसिंह और धोल राज्य के ठाकुर हाला जसाजी का युद्ध वर्णन है। जसाजी की स्त्री झाला रायसिंह को कई प्रकार से सम्बोधित कर:

१—मोतीलाल मेनारिया—'डिंगल मे वीररस'

"धीरा धीरा ठाकुराँ, गुम्मर कियाँ म जाह'
महुंगा देसी झुंपड़ां, जै घरि होसी नाह"

अपने पति के वीरत्वव्यंजक व्यक्तित्व का उद्घाटन करती है। यही नही वह स्वय अपने पति को ललकारती है कि हे विकट और निश्शंक बोलने वाले अब नीद से उठ क्योकि— 'घोडाँ पाखर धमधमी, सोवूँ राग हुवाह' और पति ने उठ कर ऐसा घमासान युद्ध किया कि पत्नी उसकी रक्त रंजित कलाइयो पर न्यौछावर होती है "केहरि मरूँ कलाइयाँ रुहिरज रत्तड़ियाँह" सिंह के केश, सर्प की मणि, बहादुरो के शरणागत, सती के स्तन और कृपाण का धन मरने पर ही हाथ लगाते हैं.—

"केहरि केस, भमंग मणि, सरणाई सुहड़ाँह
सती पयोहर, कृपण-धन, पड़सी हाथ मुवाँह"

नायक और नायिका जब क्रीड़ा करते थे तब नायक नायिका के कठोर कुचो का स्पर्श कर घबड़ा जाता था, पर मारु-बाजा बजते ही नायक ने रण क्षेत्र मे प्रवेश किया वहाँ भालो के प्रहार, बाणो की बौछार और गजदन्तो की चोटें सहन करता-करता अपनी वीरता का प्रदर्शन करता रहा। नायिका ने फूल से कोमल नायक को रणोन्माद मे वज्र से भी कठोर देखा तो वह कह उठी:—

"सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सह्या गजदंत
कठिन पयोधर लागताँ, कसमसतौ तू कंत"

वीर और शृंगार से मिली-जुली ऊँची अनुभूति और क्या हो सकती है ? क्या इस कोटि का छन्द और किसी साहित्य मे मिल सकेगा ? इस दोहे में उच्च कोटि का शृंगार है जो नायक को वीर भावो मे विरत नही करता बल्कि उसके हाथो की तलवार को और उसके सीने को सौगुना अधिर बढा देता है। यहाँ ऐसा अद्‌भुत वीरत्व भी है जो मादकता और विलासिता के घूंट पीकर भी गरल को पचाने की क्षमता रखता है। इन्ही भावों की अभिव्यक्ति सूर्यमल्ल मिश्रण के निम्न दोहे मे है:

"करड़ौ कुचनूं भाखता, पड़वा हंदी चोल
अब फूलां जिम आग मै, सैलां री घमरौल"

रूपकों के माध्यम मे भी दोनो रसो की मिली-जुली अनुभूति ईसरदास ने कराई है:

"सिणगारी सलाह सूँ बिसकामणि बरियाम
वीर आई हाला वरण करण महा जुध काम,

काम संग्राम की हाम जुध कामणी
घणा नर जोवती भोमि आई घणी,
महाबल धवलरा साहि वरमाल तूँ
सबल घड कड़तलाँ घणा सलाह सूँ" ॥ २३ ॥

भावार्थ: युद्ध के महान् कार्य करने वाले हे हाला (जसाजी) जिरह बख्तर से सुसज्जित (झाला रायसिंह की सेना रूपी) विष कन्या से, जो तुझ से विवाह करने आई है, व्याह कर। युद्ध कार्य की इच्छुक सेना-रूपी यह कामिनी अनेक वीरो को देखती हुई तेरी भूमि पर पहुँची है । हे हर धोल के महाबली पुत्र ! झालाओ की जिरह बख्तर से बहुसज्जित सबल सेना रूपी विष कन्या की वर-माला को तू ग्रहण कर अर्थात् उसे हरा कर विजय वैजयन्ती पहन ।

—मोतीलाल मेनारिया

कितने वीर दर्प से परिपूर्ण भाव है। रणभूमि ही स्वयंवर के लिए रगभूमि बन गई है। पुष्पवाटिका का कोमल प्रसंग यहाँ नही, यहाँ तो सिर देकर सौदा करने की होड है और इसीलिए पौरुषयुक्त दूल्हा जसा कुंवारो सेना रूपी कामिनी को व्याहने के लिए युद्ध रूपी तोरण की ओर चल रहा है और भुजाओ पर सारी 'रिस्क' (Risk) उसने ले रखी है:

"चढि पोरिस वर सोह चढ़ि चढि रिण तोरणि चालि
कुँवारी घड़ कड़तलाँ झूँझ भार भुज झालि"

नायिका ने पति के सुन्दर कवच को देख कर चंवरी ही मे जान लिया कि उस (पति) का सिर कट जाने पर भी धड़ लडता रहेगा और उसके प्रहारो से हाथी तक लुढकेंगे पर वह मुश्किल से गिरेगाः

"मैं परणंती परखियौ सूरति पाक सनाह
धड़ि लडिसी गुडिसी गयंद, नीठि पड़ेसी नाह"

और अब तो नायक-नायिका का मिलन-अवसर आ रहा है । इतनी विकलता है कि आवेग रुक नही सकता । कंचुकी के बन्धन अलग-अलग हो गए (करगि खग वाहतौ जुवा जूमण कसण) और वह यश तथा यौवन मे मतवाला जसा सेना रूपी विष-कामिनी के साथ अंग से अंग मिलाकर महायुद्ध रूपी पंलग पर सो गयाः

"पिलंगि महारिण पौढियौ,
कालौ भलौ कहाय

जस जोबण साजै जसौ,
मणिमथ फौज मल्हाय
मल्हौवण फौज विसकामणि जानियौ,
इसौ दीठौ न करौ बीद अहवानियौ
अभंग जसवन्त जुधि,
काजि कीर अगोअंगी
पौढियौ घडा पौढाय, चौरंगि-पिलंगि।"

कितना विराट् रूपक है सेना और कामिनी का। रीतिकालीन विलासिता इनकी पवित्रता को छू नही सकती, उच्छृंखल उन्माद वीर भावो को दबा नही सकता। यहाँ पति की मृत्यु पर (वियोग पर नही) निशदिन नैन नही बरसते. शरीर घड़ी का पेडुलम नही बनता, अगुलियो की मुद्रिका बाहो मे नही आती बल्कि पग मे मेहदी का रग लिए, हाथ मे नारियल का मंगल लिए, अधरो पर मिलन की मुस्कान लिए, हृदय मे प्रेम का आवेग लिए पत्नी-ज्वाला का शृंगार करती है, जीवन को जौहर दिखाती है और·

"सूरातन सूरा चढै, सत सतिया समदोय।
आडी धारां उतरै, गणे अनल नूं तोय॥"

—बाकीदास

की भावना को चरितार्थ करती है। 'मार कर मरना सरल है, उसमे बदले का एक नशा होता है जो चारो ओर के खतरे को नही देखता और जो खून पीने को उतावला है पर हँसते-हँसते, अपनी इच्छा से, जल-जल कर मरना इसमे त्याग की सीमा है।[१]

राजस्थान की वीर पत्नी भी रीझती है पर 'मोर-मुकुट कटि-काछनी' पर नही, मुरली की मनोहर तान पर नही, फूलो से लदी सेज पर नही बल्कि उस पति पर जिसकी मूँछ हवा मे फडफडा रही है और भालो पर सोता हुआ भी जो शत्रुओ को ललकार रहा है.

"मूँछा वाय फुरकिया, रसण झबूकै दत।
सूतौ सेला धौ करै, हूँ वलिहारी कंत॥"

सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपनी राष्ट्रीय कृति 'वीर सतसई' मे शृंगार-वीर भाव

१ —रामनाथ 'सुमन'—वेदी के फूल

की ओजमयी धारा प्रवाहित की है। राजपूत महिला का पति रण-भूमि मे गया है। इधर उसे पति की याद आ रही है पर वह नही चाहती कि वह भाग कर लौट आए। संयोग से वह देखती है कि उस का पति तो घर की ओर भाग आ रहा है। अब उसके दु:ख का क्या कहना? कायर पति को वह सामने खडा देख कर कहती है:

"की घर आवे थे कियो, हणियां वलती हाय ।
धण थारे घण नेहडै, लीधो बेग बुलाय"

हाय घर आकर तुमने क्या किया? यदि मारे जाते तो मैं तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति कहता है—प्रिय! तुम्हारा प्रेमाधिक्य ही मुझे शीघ्र बुला लाया। पत्नी पति को चाहती है पर कायर पति को नही, ऐसे पति को नही जो युद्ध से भाग कर घर आ जाए। और अगर आ गया तो वह स्पष्ट कह देती है कि सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाए, पर पत्नी की भुजा तो फिर नही मिलेगी:

"कंत लखीजै दोहि कुल, नथी फिरंती छाँह
मुड़ियां मिलसी गीदवौ, वले न धण री बाँह"

यही नही उसे तो अब ओछी कचुकी (सौभाग्य चिह्न) मे हाथ दिखाते हुए भी लज्जा आती है। और आश्चर्य होता है कि किस प्रकार उसके पति उन हाथो से शत्रु के आगे मुँह मे तिनका लेते है जिन हाथो को वे उसके स्तनो पर रखते हैं। और वह फटकारती है कि अब तो बाल सफेद हो गए है जीने का क्या भरोसा

"कंत सुपेती देखताँ, अब की जीवन आस
मो थण रहणै हाथ हूँ, घाते मुँहड़े घास"

इन वीर पत्नियो ने जहाँ कायर पतियो को फटकार दी है वहाँ वीर पतियो के घावो को सहलाया भी है। पत्नी ने हथेली पर के तलवार की मूठ के निशान को चुभन से जान लिया कि पति उसके चूडे को नही लजाएँगे।[1] विवाहोपरान्त घर मे प्रवेश करते समय ही नगाडे की ध्वनि सुन कर दूल्हे ने दुलहिन के अञ्चलमे गाँठ छुडाली और अपने घोडे की पीठ थपथपाई।[2] रति क्रीडा करते समय जो पति पत्नी की भुजाओ मे ही समा जाता था वह आज इतना फूल गया है कि

---

[1] हथलेवे ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय।
लाखाँ बाताँ हेकलो, चूडौ मो न लजाय।

[2] वंध सुणायौ बीन्द तूँ, पेसंतां घर आय।
चञ्चल साम्हैं चालियौ, अञ्चल बन्ध छुडाय॥

कवच मे भी नही समा रहा है ।[१] युद्ध मे वीरता का प्रदर्शन कर पति घर आया है; युद्ध का अन्त नही हुआ है; पति विजय के लिए अधीर है। पत्नी ने बड़े धैर्य के साथ कुछ देर के लिए पति को सुलाया है । चकवी की चीख से कहीं वह जाग न जाए इसलिए पत्नी कहती है-हे चकवी । इतनी क्यो चीखती है ? बहुत धैर्य दिलाने पर पति सोए है । सूर्योदय होने पर तू दो पहर अधिक सुख देख लेना । (क्योकि मेरे पति का युद्ध देखने को सूर्य भगवान् दोपहर तक अपना रथ रोक लेगे) ।[२]

रात को सोते समय भी वीर भावनाएँ उमड़ पडती हैं । ऐसा मालूम पडता है वीर रस के विभिन्न अवयवो मे ही उनका शरीर बना था । उन्हे सपने भी ऐसे आते होगे कि युद्ध हो रहा है, रणभेरियाँ बज रही हैं, हाथी चिघाड़ रहे है, तीरो की बौछार हो रही है और स्वप्न से जागते ही सचमुच वे तीर-कमान सँभाल कर, ढाल तूणीर बाँध कर रणक्षेत्र की ओर चल पड़ते ।

वात्सल्य एवं वीर रस का अद्भुत समन्वय भी डिंगल साहित्य की एक और विशेषता है । माता बच्चे को लोरी सुनाती है पर इसलिए नही कि 'मेरे लाल को आउरि निदरिया' बल्कि इसलिए कि "चार खूंट चौखुंटी रे बाला, नोपतडी धमकाइज थूँ ।" वह अपने बच्चे को कजरी का दूध इसलिए नहीं पिलाती कि 'तेरी चोटी बढे' बल्कि इसलिए कि 'धोला दूध पै कायरता रो कालो दाग न लाइजे थूँ ।" वह बच्चे को पकवान और फल इसलिए नही खिलाती कि वह वजन मे बहुत (overweight) बढ जाए बल्कि इसलिए कि "भारत माँ रो भार उतारजे, मत न भार बढाइजे थूँ ।" वह बच्चे को झूले मे झुलाती है पर इसलिए नही कि उसे नीद आ जाए बल्कि इसलिए कि "इतरी बार हिलाइजे रे धरती, जितरा झोला मे थनै द्यूं ।" और इस लोरी के साथ उसने बलिदान का पाठ पढ़ा था जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण था पिता के पहले पुत्र का बलिदान.

"बैठो जोड़े बापरै, बांध कसूंबल पेच
बेटो घर आयो नहीं, धोली बधण हेत"

और अगर बच्चा छोटा है, उसे चलना नही आता, तो भी कोई बात नहीं क्षत्रियत्व इसके रग-रग मे रम गया है । इसलिए बाप के कटने पर माँ के जलने पर वह; 'गूठा चूस-चूस कर घर की रखवाली करता है–

[१] हू हेली अचरज कहं, घर मे बाथ समाय ।
हाकौ सुणता हूलसै, मरणौ कौच न माय ।।

[२] वीर पिया सूतौ धणी, कुरले चकवी काय ।
देखीजे सुख दोहरै, सुख दौ जाम सिवाय ।।

"बाप कट्यो मायड़ बली, घर सूनो जाणीह
पूत अंगूठो चूंखनै, राखै निगराणीह"

डिंगल काव्य की परम्परा अब भी जीवित है । उदयपुर के श्री नाथूदान-महीयारीया ने 'वीर-सतसई' मे शृंगार और वीर भावो की मिली-जुली अद्भुत धारा बहाई है । हाड़ी रानी की वीरता को दर्शाते हुए कवि ने लिखा है कि रानी ने स्वय हाथ मे सिर काट कर चूंड़ावत को भेज दिया । आँखो से एक भी आँसू की बूँद न गिरी । वह अंजन आँखों में ही रहा, बढ कर कपोलो पर नहीं आया—

"सीस पुगायो पीव कनै, थामो रंगताँ कीच ।
कहियो पण वहियो नही, काजल नैणाँ बीच"

रानी ने बलिदान के पहले आभूषण बाँट दिए । उन्हे स्वर्ग मे साथ नही ले गई । धड़ के आभूषण रंगमहल में रह गए और सिर प्रियतम के पास :

"हाड़ी भूषण बाँटिया, सुरपुर लिया न साथ ।
धड़ रा रंग महलाँ दिया, सिर रा रावत हाथ" ।।

अन्य कवियो मे 'श्री मुकुल' ने अपनी लोकप्रिय कविता 'सैनानी' द्वारा इसी परम्परा को निभाया है ।

डिंगल-काव्य की यह अद्भुत मिली-जुली अनुभूति अपने आप मे विशिष्ट है । शृङ्गार की कालिन्दजा और वीरता की सुरसरि के सगम पर इन कवियो ने ऐसे काव्य-तीर्थ का निर्माण किया है कि जिसमे अवगाहन करने पर हृदय पवित्र बनता है, मस्तिष्क जागृत होता है और संपूर्ण शरीर मे एक साथ स्फूर्ति का संचार हो उठता है ।

"वीर-सतसई" में नारी-भावना

नारी पुरुष का आकर्षण-केन्द्र रही है और पुरुष नारी का जीवन-सम्बल। विश्व के कलाकारो ने अपने साहित्य-मन्दिर मे नारी की ही प्रतिष्ठा कर, उसके चरणो मे बैठकर हृदयग्राहिणी भावुकता, मनोहारिणी कल्पना और उर्ध्व-गामिनी चिन्तना के बल पर उसकी आरती उतारी है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कह कर 'जीवन के सुन्दर समतल' मे 'पीयूप स्रोत' सी बहने का आह्वान किया है, 'मेघवन' बीच खिलते हुए 'बीजनी के फूलो' से उसका शृंगार कर 'जीवन-निशीथ' के अन्धकार को दूर भगाने का प्रयत्न किया है, 'कदम्ब तरु' के नीचे 'धीरे २ मुरली' बजाकर उसको रिझाने का उपक्रम किया है। और वस्तुतः नारी आई, सुनहला-प्यार लेकर, आशा का प्रेरक पतवार लेकर, सृष्टि का सौन्दर्य-सार लेकर।

वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की दृष्टि इसी 'प्रेरक पतवार' के रूप पर पड़ी। उन्होने नारी को शृंगार और शौर्य के संधि-स्थल पर खड़ी देखा जहाँ 'शृंगार-सतसई' की वासनात्मक धारा आकर अवरुद्ध हो जाती है, जहाँ नारी को बाँधने वाली घर की चहार दिवारी टूट जाती है, जहाँ नारी की कोमलता भाप बनकर उड जाती है। वह नारी कोई पद्मिनी नायिका नही जिसकी 'ससि देउ' सवार कर बनाई गई हो और जिनमे 'पद्म गंध' निकला करती हो, वह नारी इतनी आलोकपूर्ण भी नही कि 'पत्राहि तिथि पाइये' और न उसमे इतनी क्षमता है कि उसे 'दरसि कै' खरैं 'लजाने लाल'। पर वह तो अपने अन्दर एटम की वह सक्रियता (Radio-activity) भरे हुए है कि उसके सामने कोई हार कर, कायर बन कर युद्ध क्षेत्र से भागकर आ ही नही सकता। और अगर आ गया तो जिस प्रकार 'डाकण दीठ' चलाकर अपने भक्ष्य को खा जाती है उसी प्रकार माता अपने कायर पुत्र को 'थण' दिखा-कर और पत्नी अपने पति को 'वलय' बताकर खा जाने मे किसी प्रकार का संकोच नही करती। क्योकि यह राजपूत ललना सब कुछ सहन कर सकती है लेकिन अगर उसका पुत्र उसके दूध को लजा दे और पति उसकी चूडियो को, तो उसका हृदय 'उलटी दाह' से संतप्त हो उठता है।

पाणि-ग्रहण के अवसर पर वर-वधू के हृदय नाना भावो से तरङ्गित हो उठते हैं। वधू अपने रङ्गीले सपनो को साकार देखने मे तल्लीन हो जाती है, भावी जीवन की राग रागिनियां उसके मनोलोक मे ताल और लय पर थिरक

उठती है, लेकिन यह 'सतसई' की वधू तो जन्म जात रण-चण्डी है, पतिदेव को हथेली के तलवार की मूठ के निशानो का स्पर्श होते ही 'हथलेवै' के समय ही वह जान जाती है कि युद्ध मे अकेले होने पर भी मेरे पति कभी भी मेरे चूड़े को न लजायेगे। (चूड़ौ मो न लजाय)

आत्म-विश्वास की इतनी दृढता, रङ्ग मे रण विधान की यह वैचित्र्य कल्पना अन्यत्र कहा देखने को मिलेगी ? जगत्-जननी सीता केवल 'कंगन मे नग की परछाई' निहार कर ही रह जाती है।

वीर क्षत्राणी नर के लिये प्रेरणा है। वह पति को रण जाते रोकने की कल्पना भी नही कर सकती प्रत्युत वह तो पति को रण मे भेजने के लिये सदैव लालायित रहती है, जब वह देखती है कि उसके पति 'दमंगल विण दुमनौ' रहते हैं और कवच की कड़ियां भी बन्द नही करते हैं तो वह सखी से कहती है कि "वधावौ रया भडा, जेथ जुडी जै कन्त।" (उन वीरो को प्रोत्साहन दो जो आकर प्रियतम से भिड सकें)—द्वार पर शत्रुओं के 'मैगल' घूमते देखकर वह पति को जगाने के लिये कहती है कि "सपनो सिव साचौ कियौ।" गौतम बुद्ध की परिस्थिति से बिल्कुल उल्टी परिस्थिति है। वहा गौतम यशोधरा को सोती हुई छोडकर चले जाते है जब कि यहा स्वयं वीर ललना पति को जगाकर रण क्षेत्र में जान को प्रेरित करती है। यहा 'सखी वे मुझ से कहकर जाते' जैसी करुण पुकार को स्थान ही नही, कोई पश्चाताप नही, कोई विवशता नही, कोई अनुपात नही, क्यो कि वह तो स्वयं ही—

> स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
> प्रियतम को प्राणो के पण मे,
> हमी भेज देती है रण मे,
> क्षात्र धर्म के नाते—"की

प्रत्यक्ष सजीव आदर्श मूर्ति है। जब वह देखती है कि युद्ध के नगाड़े-बज रहे है, शत्रुओ का दल उन्मत्त होकर गरज रहा है तो वह प्रेम की पुतली मदिरा की प्याली ढुलका देती है, और अदम्य साहस बटोरकर कह उठती है "नीदालु अब छांडणा, भीड़ाणा कुच पीन।" उसे पूरा विश्वास है कि उसके पति को 'है चूड़ाँ बल' क्यों कि उसने गजमुक्ताओ से पूजाकर पति को विदा किया है। पति के विजयोल्लास मे अपना उल्लास मिलाकर वह "कुमैत" पर बलिहारी जाती है, सिकलीगर की चतुरता पर अपने आपको न्यौछावर करती है क्योकि उसने तलवार की धार को इतनी तेज की कि "रण झटकंता कंत रे, लगै न झाटक एक।"

माता के रूप मे क्षत्राणी का वीरत्व पग-पग पर दृष्टिगत होता है। उसका पुत्र आठ वरस का हुआ तो क्या हुआ उसे जो वालक समझते है वे भूल करते है क्योंकि 'एथ घराणै सीहणी कंवर जणै सो काल'' (इस घराने मे तो सिहनी जिसे जन्म देती है वह काल रूप ही होता है)। वह तो स्वामी भक्ति का अनन्य आदर्श ''चून सलूणी सेर ले, मोल समप्पै सीम'' के रूप मे रखता है। यह वीर माता गर्भ स्थित सन्तान को ही इतनी सच्ची, ठोस और वास्तविक शिक्षा दे देती है कि सती होने के जन्म जात संस्कार 'जाचां हदै तापणै, हरखै धी दृग लाय'' (प्रसूति गृह मे जच्चाएं जब अंगीठी के पास तापती है तो नवजात वच्ची आग की तरफ टकटकी लगाकर हर्षित होती है) और प्रसव होते ही बच्चा नाल काटने की छुरी की ओर झपट पड़ता है। क्षत्राणी का वच्चा सूर के बालक की भाति भंवरा-चकडोरी लेकर खेलने नही जाता, गेद का खेल उसे पसन्द नही, वह चमचमाती तलवारो से,तीरकमानो से आग का खेल खेलता है जिसमे पसीने की जगह खून वहता है। वह माता से आकर शिकायत नही करता, अपने आप समस्या का समाधान कर देता है। और यह वीर ललना अपने पुत्र को 'कजरी' का दूध नही पिलाती, यशोदा की भाति उसकी इच्छा यह नही कि 'तेरी चोटी वढ़ै' वह तो —उसे जहर पिलाती है क्योकि वह जानती है कि प्रण पालन मे—उमे लडते-लड़ते प्राणोत्सर्ग करना होगा।

वह अपने पुत्र को झूला झुलाती है लेकिन इसलिए नही कि''मेरे लाल को आउरि निंदरिया'' बल्कि इमलिये कि वह जितनी बार अपने पुत्र को झटका दे उतनी ही बार वह इस धरती को भी हिलादे। वह अपने पुत्र को 'सोवत जानि है मौन रहि-रहि' 'करि-करि सैन' नही बताती बल्कि वह तो उसे सदा जागरूक रखना चाहती है। इसलिये उसका लाल न तो 'कबहुं पलक' मूंदता है और न 'अवर' फरकाता है बल्कि वह तो समझ जाता है कि 'इला न देणी आपणी' और इसलिये कभी भी अकुलाकर नही उठता। चाहे कितनी ही बाधाएं आए फिर भी वह क्षत्रिय-पुत्र तो काले नाग की भाति फन उठाकर समर भूमि की ओर चल पड़ता है, क्योकि प्रसूति-काल के समय ही बजते हुए थाल को उसने आंख फुला-फुला कर देख लिया था। यही कारण है कि वह कभी भी सूर के कृष्ण की भाति नही कहता 'मैया मैं न चरैहो गाइ।'

सूर्य मल्ल ने जिस नारी का चित्रण किया है वह वीर समाज के अनुरूप ही है। क्या हुआ यदि परिवार के लोग कही प्रीति-भोज मे चले गये और अचानक आक्रमण हो गया ? कोई परेशानी नही, कोई विकलता नही, सिहनी

की सन्तान ने तलवार उठाकर अकेले ही डटकर शत्रु-सेना से लोहा लिया 'सीहण जाई सीहणी, लीधी तेग उठाय।' 'विण नूं'त्यारा पाहुणा' आ गये तो क्या हुआ, उनके आतिथ्य सत्कार के लिये भी तत्काल ही योजना बन गई कि ननद तो ढाल तलवार लेकर ड्यौढी पर खडी रहे और भाभी बन्दूक लेकर मेडी पर।

"भाभी डौढी हूं खड़ी, लीधा खेटक रूक।
थे मनुहारी पाहुणां, मेड़ी झाल बन्दूक।"

ये वीर बालाएं शाश्वत सुहाग का वरदान लेकर पृथ्वी पर नही उतरी। यह नही कहा जा सकता कि वे इतनी योग्य नही है या उनका पुण्योदय इतना बलवान नही है, बल्कि वे तो प्रारम्भ मे ही जानती है कि उनका जीवन-सर्वस्व सदा तलवारों के साथ खेला करता है, रण-वाद्य के स्वरो मे कंठ मिलाकर आत्म-साधना किया करता है, धारा-तीर्थ मे स्नान कर पावनता का लेपन किया करता है फिर कैसे 'पात मे' परोसता हुआ वह किसी को भूल जाय, और अगर कभी अपनी सिद्धि तक पहुँचने में असफल होकर वह युद्ध मे मारा भी जाय तो भी डर नही। वे तो अपनी शृंगार-मंजूषा मे ही नारियल को सुरक्षित रखती है ताकि यथा समय बिना किसी विलम्ब के पति के साथ सती हो सके। कितनी मिलन व्यग्रता, कितना आत्मीय स्नेह, कितनी दूर-दर्शिता। आज नारी भले ही क्रीम, पाउडर, इत्र-फुलेल और लिपिस्टिक से अपनी शृंगार मंजूषा सजाकर पति को रिझाने का प्रयत्न करे, पातिव्रत निभाने का दम्भ भरे पर क्या समर्पण की यह झांकी उसके लाल२ अधरो में मिल सकेगी ? वीर-चरित्र की यह उज्ज्वलता उसके कजराने नैनो मे झलक सकेगी ? आत्म-दर्प की यह ज्वाला उसका सुकुमार तन सहन कर सकेगा ? जब कि बिहारी की नायिका तो भूषण के भार से ही दबी जा रही है और तो क्या कहा जाय 'सूधे पात न धर परत सोभा ही के भार।' वहां 'वीर सतसई' की नारी तो पति को यहा तक चेतावनी (Warning) दे देती है कि अगर वह युद्ध से भगकर आ गया तो उसे सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, प्रियतमा की भुजाएँ तो फिर कभी मिलने की नही।

'मुड़िया मिलसी गीदवो, वले न धण री बाह'

कायरो को लेकर इन वीर रमणियो ने बहुत सुन्दर उक्तिया कही हैं। वह दर्जिन से कहती है कि अब तू मेरे लिए विधवा के योग्य लंबी कचुकी लाया करना क्योंकि मेरे पति युद्ध से भागकर चले आये है। मनिहारिन से कहती है अब तू इस मकान पर मत आना। मेरा तो मरण ही हो गया 'पीव मुदा वर आविया' फिर 'विधवा किसा वसाव' (विधवाओ के लिए

शृंगार कैसा ?) कितना चुभता व्यंग्य, कितना नैराश्य और अवसाद, कितना धैर्य और सयम ! शेक्सपियर की यह भावना "Cowards die many a time before their deaths. The valiant never taste of death but once" नारी के रग रग मे व्याप्त सी प्रतीत होती है तभी तो वह शृंगार-प्रसाधनों को लात मारकर मरण त्यौहार मनाने को उद्यत हो जाती है । और कह उठती है 'पग पग चूड़ी पाछटूं जो रावत री जाय'। यह नही कि वह शेक्सपियर-के Macbeth की तरह विवश होकर केवल इतना कह सके "I have no spur to prick the sides of my intent, but only vaulting ambition" बल्कि पुकार उठती है 'सजनि मरण को वरण करो री'। उसकी सास के आनन्द का पार नही क्योकि आज उसकी पुत्रवधू सती होने जा रही है और उसका पुत्र युद्ध भूमि मे प्राण न्यौछावर करने के लिये प्रमाण कर रहा है' बहू बलेवा हूलसै पूत मरेवा जाय'। सती होने के लिए इन ललनाओ मे कितनी व्यग्रता है। झरोखे मे खडी हुई पत्नी ने ज्योहि देखा कि शत्रुओं का दल प्रबल है, पति के देह-पात का संवाद सुने विना ही उसका मरण अवश्यभावी जानकर हाथ मे नारियल लेकर सती होने के लिए तैयार हो गई ।

"ऊभी गोरव अवेखियौ, पेंलां रौ दल सेर ।
पड़ियौ धव सुणियौ-नही, लीधौ धण नालेर ॥"

यहाँ मीरा को तरह 'ऊभी पंथ निहारु' जैसी मिलन की भावना नही है, वह तो नाइन से भी यही कहती है कि आज मेरे पैर मे महावर मत लगा, कल युद्ध मे यदि पति धारा-तीर्थ मे स्नान करे तो फिर खूब रंग देना 'धारा लागीजे धणी तो दीजे धण रंग' केवल सती होने के लिए शृंगार करना चाहती है। यह वीर नारी कोई दब्बू-दासत्व मे पली हुई स्त्री नही है । 'पति के गुणो के वशीभूत हुई सीता के रूप मे वह प्रकट नही हुई है, उसके स्वतंत्र तेज की ज्वाला द्रौपदी की तेजस्विता की भी याद दिलाती है।' चितारोहण के बाद स्वर्ग मे पहुंचने पर अपने पति को अप्सरा के साथ देख-कर वह अप्सरा पर पिल पड़ती है 'पगली अप्सरा । सूने पतियो का अपनाकर घमण्ड मत कर। क्यो यो ही स्वर्ग बसाया जाता है। शूरवीर कौन होता है इसकी परख तो केवल सती स्त्री को ही है जो उसे प्राप्त करने के लिए अग्नि-स्नान करके स्वर्ग मे पहुंचती है।' 'काली अच्छर छक म कर, सूना धव अपणाय । सूर किसौ परखै सती, वोली सुरग वसाय ॥'

आज कितनी ऐसी वीर नारियाँ हैं जो अप्सरा को तो क्या सामान्य स्त्री

को भी ऐसी फटकार दे सके और अपना जन्म-जन्मान्तर परिणय निभा सकें। सूर की गोपियाँ भी 'मुरली तऊ गोपालहिं भावति' कहकर ही ठिठक जाती है। 'वीरसतसई' की वीर नारी घनानन्द का 'धरणि धंसौ कि अकासहि चीरो' का आदर्श लेकर स्वर्ग मे भी पहुंच जाती है और अपने पति से कह उठती है कि 'हे कंत। मृत्यु लोक मे आप कहा करते थे कि सती होने से ही अपना साथ स्वर्ग में बना रहेगा। मैं स्वर्गलोक मे आ ही रही थी कि आपने यह क्या कर लिया। इस अप्सरा का अंचल छोडो जिससे मै आपका हाथ पकड सकूं। 'छोडो अच्छर छेहड़ो सो धण झालै हाथ।' महादेवी की तरह वह यह नही पूछती कि- 'क्या अमरो का लोक मिलेगा?' मिलन के लिए वह 'नैन कौड़िया होइ रहे' का स्वाग नहीं रचती, 'हाड भए सब किंगरी, नसैं भई सब ताति' जैसी दशा बनाने का उसे अवसर ही नही मिलता, 'सुरत निरत का दिवला संजोकर त्रिकुटी महल मे झाकी लगाने का उसने अभ्यास ही नही किया, 'पाना ज्यु पीली पडने, की उसकी जिज्ञासा ही नही, 'कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होई' की भावना ही नही, 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह मे चिर हूं' की कल्पना भी नही, क्योकि उसने अंगार से शृंगार करना सीख लिया है, तरल ज्वाला से प्याला भरने का अभ्यास उसने कर लिया है, आग मे जलते हुए 'बारी धण गल बांह मे, भोडौ नाह नचीत' का रहस्य उसने समझ लिया है। इसीलिए उसे बुढापे मे भी यही डर लगा रहता है कि कही मेरे स्तनो पर रहने वाले हाथो से मेरे पति शत्रु के समक्ष याचना न करलें।

'मो थण रहणे हाथ हूं घाले मुंहड़े घास'

राजस्थानी वीर प्राणो को हथेली पर लेकर चलते आये है। स्वामिभक्ति की यह भावना किसी विकृत बुद्धि की उपज नही कही जा सकती, वीरत्व का यह अदम्य साहस क्षणिक जोश नही कहा जा सकता, मर मिटने की यह अमित पिपासा सांसारिक लालसा नहीं कही जा सकती, यह तो अपने आप मे एक महान साधना थी, निष्काम तपस्या थी, जिसमे मदमाता यौवन होमा गया, अतृप्त सौन्दर्य मे झुमती हुई वीर बालाओ की रति शैय्या पर आने की प्रतीक्षा की आहुति दी गई। रमणियो का मादक यौवन साधना का मण्डप बन गया, करुणा और वीरत्व का यज्ञ-कुंड बन गया, काम पर धर्म की विजय का प्रतीक बन गया—

"किण दिन देखूं बाटडी, आतां पडवै तूझ।
घाव भरंतां आवगौ, बीत्यौ जौबन मूझ॥"

अधरो पर ज्वाला की मुस्कान लेकर, हृदय मे विस्फोटक व्यक्तित्व की

आग दबाकर, नयनों में रक्त के आसू भरकर यह वीर नारी यही कहती रही —

"यौवन ! तेरी चचल छाया ।
इसमे बैठ घूंट भर पीलूं जो रस तू है लाया ।"

लेकिन उसे अवसर ही नही मिला और यह 'पलभर रुकने वाला पथिक' जिधर से आया था, उधर ही चला गया ।

राजस्थानी लोकगीत

लोकगीत हृदय की निश्छल अभिव्यक्ति का माध्यम :

कला आत्मा की आनन्दात्मक अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति ललित कला द्वारा जीवन मे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की प्रतिष्ठा करती है। चित्रकारो ने तूलिका द्वारा जीवन के विविध दृश्य चित्रित किये, गायको ने नाद के प्रभाव से मानव हृदय के सूक्ष्मतम तारो को झंकृत किया, कवियो ने शब्दों मे अन्तर को मथने वाली भावनाओ को बांधकर रस-सृष्टि की पर लोकगीतकारो ने संगीत की स्वर-लहरी मे जीवन के सुख-दुख, राग-विराग, आस्था-अनास्था, को पिघला कर ऐसा रस-वर्षण किया कि उसके मधुर प्रवाह मे व्यक्ति का अंह घुल कर समाज की भाव-धारा के साथ एकमेक हो गया। साहित्यिक गीतकार जब अपनी भावनाओ को व्यक्त करता है तब वह अपनी सामाजिक स्थिति, वैयक्तिक मान्यता और आस पास के परिवेश से बंधा रहता है। उसमे दुराव होता है, संकोच होता है पर लोकगीतकार इन सब मर्यादाओ (बन्धनो) से निर्मुक्त होकर मानव जीवन की ऐसी सार्वकालिक एवं सार्वभौम अभिव्यक्ति करता है कि उसकी निश्छलता को कोई छल नही सकता। जो नारी अपनी कड़वी-मीठी बात लोक-लज्जा और सामाजिक स्थिति के कारण कभी खुलकर कह नही सकती वह लोकगीतो में इतनी खुली है कि उसका कोई मुकाबला नही। उसने अपनी बात को विभिन्न स्वरो और रूपो मे गा गाकर कहा है। सब को सुनाया है एकान्त मे नही, समाजोत्सवों में। यही उसकी महानता है।

लोकगीत की परम्परा और महत्ता :

लोकगीत की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव संस्कृति। गुफाओ मे जीवन व्यापन करने वाले मानव मे जब थोडी-बहुत बुद्धि का विकास हुआ तब उसने विकसित होती हुई भावनाओ को व्यक्त करने के लिए विकृत आलाप लेना प्रारम्भ किया। यही आदि-मानव का आदि संगीत पेरी के शब्दो मे लोकगीत है। ग्रिम के अनुसार लोक-गीत अपने आप बनते हैं। 'वह न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान होता है, जिसकी जड़ें तो धरती मे दूर तक (भूतकाल मे) धंसी हुई होती हैं, किन्तु जिसमे नित्य नई-नई डालियाँ, पल्लव और फूल लगते रहने है।[1] गीतो का भण्डार अनन्त है।

---

१. मि० आर० बी० विलियम्स

वेदो तक मे 'गाथित' शब्द 'गाने वाले' के लिए प्रयुक्त हुआ है 'वाल्मीकि रामायण,' 'श्रीमद्भागवतगीता' आदि प्राचीन ग्रंथो मे भी गाथाओ (गीतो) की परम्परा के सूत्र मिलते हैं। नैषध-चरित्र मे हर्ष ने भी स्त्रियो के द्वारा गाये जाने वाले गीतो के विषय मे लिखा है। तुलसीदास जी भी अपने 'रामचरित मानस' मे कहते है :—

'चली संग लइ सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी ।'

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोकगीतो को ग्राम-गीत कहा है। उनके अनुसार इन गीतो मे आर्यो के आगमन से पूर्व भारत मे जो सभ्यता प्रचलित थी उसका मूल रूप सुरक्षित है। आर्यों ने राजनैतिक रूप मे तो भारतवर्ष पर विजय प्राप्त की थी पर सांस्कृतिक रूप मे वे यहाँ के मूल निवासियो द्वारा प्रभावित हुए। ग्रामगीत इसी सभ्यता के वेद हैं। हमारी सभ्यता ने कई रूप देखे। इस्लाम और आंग्ल सभ्यता के निकट सम्पर्क मे भी वह आई, उससे प्रभावित भी हुई। हमारा साहित्यिक आन्दोलन उससे प्रभाव ग्रहण कर आगे भी बढ़ा पर ये लोक गीत अब भी अपनी मूल सांस्कृतिक थाती संभाले हुए हैं न इनमे जीर्णता आई न मृत्यु। ये नित नवीन है क्योकि 'इनमे धरती गाती है, पहाड गाते हैं, नदिया गाती है, फसलें गाती है, उत्सव और मेले, ऋतुएं और परम्पराएँ गाती हैं।'[1] इनमे हमारे देश का सच्चा इतिहास, उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श सुरक्षित है। द्विवेजी ने तो यहाँ तक कहने की हिम्मत की है कि इनका महत्व मोहनजोदडो से भी अधिक है। मोहनजोदड़ो सरीखे भग्न-स्तूप तो इनके (ग्रामगीतो के) भाष्य का काम दे सकते है। आधुनिक युग मे आकर इन गीतो ने राष्ट्रीयता, फैशनप्रियता, और सामाजिक विकृति का भी चोला पहन लिया है। युगीन मान्यताओ के अनुसार ये श्वास-प्रश्वास ग्रहण करते रहे हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण :

राजस्थानी लोकगीतो को सामान्यतः निम्नलिखित वर्गो मे बाटा जा सकता है :—

(१) बालक-बालिकाओं के गीत .

ये गीत सामान्यत. खेलकूद से सम्बन्ध रखने हैं—घुडल्या, सल्ला, हिरणी, डेडक माता, संझा आदि के गीत।

---

१. महात्मा गाँधी

(२) स्त्रियों के गीत :

इनको चार उपवर्गो मे बांटा जा सकता है :—

(क) जन्म-संस्कार सम्बन्धी :- आगरणी, घूघरी, पगल्या, बधावा, सूरज-पूजा, जलमा-पूजन, मुण्डन, लोरिया, उपनयन संस्कार आदि के गीत।

(ख) विवाह-संस्कार सम्बन्धी :—वर-वधू की खोज, सगाई, चाक नोतना, बधावा, हल्दी, नृत्यगीत, उकड्डीपूजा, रातिजगा, मासेरा, घोडी, बना, सेवरा, वर निकासी, तोरण, हथलेवा, कंवर कलेवा, जीमणवार, बिदाई, डोरा-काकण, पारसी, दोहे आदि।

(ग) व्रत-भजन सम्बन्धी :—प्रभाती, गंगाजी, चन्द्रसखी के भजन, ओखा-बावजी, शीतला माता, लालबाई फूलबाई, राम-कृष्ण-शिव-सत्यनारायण के गीत, कार्तिक मास के गीत आदि।

(घ) ऋतु-पर्व सम्बन्धी :—उद्यान गीत, होली, रसिया, फाग, सावन के गीत, हिंडोला, हरियाली, तीज. गणगौर,आदि।

(३) पुरुषों के गीत :

कृषि-गीत, हीड, ग्यारस, तेज्या, धोल्या, नागजी, निहालदे, फाग, जोगीडा, नायो के गीत, रामदेवजी, पाबूजी, डूंगजी, जवारजी, पन्यीड़ा आदि के गीत।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक भेद किये जा सकते हैं। पर यह सत्य है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव-जीवन के विभिन्न संस्कार, लोकाचार, और विधि-विधान इन गीतो मे गूथे गये हैं। जब कभी प्रसन्नता के क्षण आये, लोक गीतो ने उछलते-कूदते उन्हे व्यक्त किया, जब कभी मलिनता की घटाएं उमड़ी लोकगीतो ने गरज-गरज कर उन्हे बरसाया और जब कभी जीवन खतरे में पड़ा लोकगीतो ने साथ रह-रहकर उसे उबारा। ये मानव हृदय के अनन्त संगी रहे हैं। इन्होने उसकी भूख मिटाई है, प्यास बुझाई है, श्रम का परिहार किया है, भय का बहिष्कार किया है। मानव रोया है इनकी गोदी मे, हँसा है इनके आगन मे, बढ़ा है इनके लहलहाते खेतो मे।

लोकगीतों का भाव-सौन्दर्य :

लोकगीत शक्ति, शील और सौन्दर्य के अटूट स्त्रोत हैं। राजस्थान त्याग, बलिदान और समर्पण का रण-स्थल रहा है तो प्रेम, करुणा और ममता का रंगस्थल भी। यहा का साहित्यकार एक हाथ मे तलवार और दूसरे मे वीणा लेकर आगे बढा है। यहाँ के लोकगीतो मे भी वीरत्व को फड़काने वाली

स्फीत फूत्कार है, ममत्व को गुदगुदाने वाली मादक मनुहार है और हृदय को विदग्ध करने वाली करुण-कातर पुकार है। लोकगीतो मे सबसे अधिक गीत प्रेम मे भीगे हुए है। उससे कम शान्त-रस से आपूर्ण हैं तो वीर- रस से ऊर्जस्वित।

प्रेम का जितना निश्छल उद्रेक परिवार मे होता है उतना शायद अन्यत्र नही। पारिवारिक विभिन्न सम्बन्धो को लेकर सुन्दर भावप्रवण लोकगीत रचे गये है। वर्षाऋतु मे गाया जाने वाला 'पीपली' गीत नारी हृदय की प्रेम-भावना का निचोड़ है। पति नौकरी के लिए परदेश जा रहा है। पत्नी अकेली कैसे रह सकती है? वह अपने फले-फूले यौवन का स्मरण दिलाने के लिए स्वयं पीपली बन गई है — 'हे प्रियतम! जिस पीपली को आपने बोई थी वह अब घेर घुमेर (हरी भरी) हो गई है, उसकी छाया का आनन्द लेने का समय आया कि आप नौकरी पर चल पड़े। हमारी लाल नणद के भाई! मुझ पिया की प्यारी को भी अपने साथ ले चलो —

'वाय चाल्या छा भंवरजी पीपलीजी,
हाजी ढोला हो गई घेर घुमेर,
बैठन की रुत चाल्या चाकरीजो,
एजी म्हारी लाल नणद रा ओ वीर,
पिया की पियारी ने सागे ले चलो जी।'

वह साथ इसलिए जाना चाहती हैं कि आर्थिक संकट पड़ने पर पति के लिए सोने की मोहर बन जाय, भूख लगने पर सरस जलेबी बन जाय, धूप लगने पर छायादार बदली बन जाय, नीद आने पर सुखद सेज बन जाय, प्यास लगने पर मीठे पानी की कुई बन जाय और तो और उसके (पति) साथ चलने के लिए रथ का बैल बन जाय या मक्खी की तरह उससे ही चिपक जाय —

माखी होकर भंवरजी चिप चलूंजी
हाजी ढोला बन ज्याऊं रुणझुण बैल
हारया थाक्योड़ा मारूजी जोतलोजी
एजी म्हारा पियाजी ने पलक न आय
पिया की प्यारी ने सागे ले चलोजी।

कितनी समर्पण की भावना, कितना तादात्म्य? विलास की गंध नहीं, वासना की छाया नही, काम की पिपासा नही! शुद्ध आत्म-समर्पण।

पर पति आखिर चला ही गया। अकेला ही कर्म क्षेत्र में जुट गया। पत्नी अकेली रह गई। बहुत समय व्यतीत हो गया पर प्रिय नही लौटा। छप्पर पुराना पड़ गया, बास तिड़कने लगे 'छप्पर पुराणो पड़ गयो जी, तिडकन लागा बांस' नारी हृदय व्यथित और विवश हो गया—कुए की गहराई नापी जा सकती है, पर समुद्र को कैसे नापे, बच्चे को रखा जा सकता है पर यौवन को कैसे रखे, कागज को पढा जा सकता है पर भाग्य को कैसे पढे, तृण तोडा जा सकता है पर प्रीत कैसे तोडी जाय—

कुवो तो व्है तो ढोला थागलूं रे,
समंदर थाग्यो नी जाय।
टाबर व्है तो आलीजा राख न्नूं जी,
जोवन राख्यो नी जाय।
कागद व्है तो पिया बांच लूं जी,
करम न बाच्यो जाय।
तिनको व्है तो पिया तोड़ ल्यूं रे,
प्रीत न तोड़ी जाय!

अतः हे प्रिय जल्दी ही लौट आओ क्योकि नोकरी तो एक पैसे के बराबर है परन्तु घर की नारी लाख मोहर के बराबर —

अस्सी ने टकां री पिया चाकरी जी,
लाख मोहर री घर रो नार।

इतने मे एक कौआ उड़कर उसकी तरफ आया और छत पर बैठ गया। विरह विदग्धा पत्नी ने उससे कहा —' ए मेरे काले कौए! तू उड़, उड़ और शीघ्र उड़। मेरे पति के आने की सूचना दे। जितना जल्दी आयेगा उतनी ही मैं तुझे खीर खिलाऊंगी, तेरी काली चोच सोने से मढवा दूंगी, तेरे नन्हे-नन्हे पांवो में छनछनाते घुंघरू बांधूगी, गले मे कीमती हार तथा अंगुलियो मे अंगूठी पहनाऊंगी और तेरे पंख चांदी के बनवादूंगी—

उड़, उड़ रे, उड़, उड़ रे,
उड़ उड़ रे म्हारा काला रे कागला,
कद म्हारा पियूजी घर आवै!
खीर खांड रो जीमण जीमाऊँ,
सोना री चोंच मँढाऊं म्हारा कागा-
जद म्हारा पियूजी घर आवै।

पगल्या मे थारे बांधू रे घूघरा,
गला मे हार पेराऊं म्हारा कागा—जद म्हारा…
आंगलियां में थारे अंगूठी कराऊं,
चांदी रा पांख लगाऊं म्हारा कागा—जद म्हारा…

वह अपने प्रिय के लिए सब कुछ कर सकती है।

आखिर उसका प्रियतम आया। कभी 'पनिहारिन' के रूप मे उससे विचित्र भेंट हुई। कभी सुदूर युद्ध-क्षेत्र से लौटता हुआ प्रवासी पति अपने वीर सैनिकों के साथ नजर आया। रग-बिरंगी पगडयिा दिखाई दी —

आयो आयो मेवाडा रो साथ,
आधो कसूमल ने आधो केसरिया।

विस्तृत मैदान मे किरणो से भाले चमक उठे, नक्कारे की आवाज सुनाई दी .—

छापर भलक्या छै सैल,
घाटी रो नगारो मैं सुण्यो जी राज।

घोडो की टापे और हाथियो के गले मे बधी टोकरें झनझना उठी —

घोड़ला री बाजी खुरताल,
हसथ्यां रा बाज्या वीर घंट टोकरा।

स्वागत की तैयारिया शुरू हुई। घोडो के लिए छायादार स्थान, हाथियो के लिए चौक तथा ऊंटो के लिए मुलायम रेत बिछा दी गई। और संयोग के क्षणो की सुनहली कल्पना साकार हो उतर आई। केशर और कुंकुम का बना हुआ महल, उसमें काच जडित आगन-पति का प्रतिबिम्ब मानो किरणो मे कोई सूर्य उदय हुआ हो, 'जाणै काई किरण मे सूरज ऊगियो' और पत्नी की छाया मानो बिजली चमकी हो, 'जाणे कोई आभा मे चमकी बीजली जी।'

विरह मे पत्नी जितनी व्यथित है मिलन मे उतनी ही उत्फुल्ल। संयोग शृंगार मे मान, मनुहार, सौतिया डाह, फरमाइश आदि के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। पत्नी ने कई बार मागें रखी पर हर बार पति उन्हे ठुकराता गया। आज पत्नी ने साफ जवाब दे दिया 'पालो कोनी काटू सा' हार कर पति को जोधपुर से चूंदड़ी, बूंदी से फूंदी और कोटा से गोटा लाने की स्वीकृति देनी पड़ी। यदि वह स्वीकृति न देता तो उसका संघर्ष आगे बढ़ता वह पूर्ण रूप से असहयोग कर देती—न तो बार बार खटखटाने पर किंवाड़ खोलती, न पलग पर सोती—पत्नी का 'अल्टीमेटम' देखिये —

'जो नहीं लावोला तो बालम तुरत रोष हो जासूं
पिलंगां पर पग धरूं नही मैं घरत्या ही सो जासूं ।'

सामन्ती वर्ग में बहुविवाह की प्रथा थी । सौतियां-डाह का वर्णन इसी संदर्भ मे मिलता है । छोटी बहू गले की हंसली, हाथो मे पहिनने की चूडी. साड़ी तथा कड़ियो की मांग करती है पर बडी बहू कभी ओलों के कारण फसल खराब होने की, कभी देवर की शादी करने की तो कभी पति के बीमार होने की बात कहकर उसकी मांगें यों ही टालती रहती है—

ल्होडीजी केवे छै म्हारे सालुड़ो मोलाय दो
बडोडी केवे छै म्हारे गडा पड़ग्या,
डोल्यां रा खेत पड़त रेईग्या,
म्हारे अबरके तो देवरजी कुंवारा रेईग्या

आखिर छोटी बहू अत्यन्त उदास हो जाती है और अलग होने की बात कह बैठती है ।

सास-बहू के पारस्परिक प्रेम और झगड़ों को लेकर भी कई गीत प्रचलित हैं । 'सहेल्यां ऐ आम्बो मोरियो' गीत वधू के आदर्श का जीता-जागता चित्र है । राजस्थानी वधू की आभूषणो के प्रति कोई आसक्ति नही (सासू गहणै नैं कांई पूछो) उसके लिये तो सारा परिवार ही गहना है (गहणो ओ म्हारो सै परिवार) ससुर राजा हैं, सास रत्नो की भण्डार । जेठ उसके बाजूबंद है तो जेठाणी उसकी लूंब । देवर हाथीदात का चूड़ला है तो देराणी उस चूड़ले की मजीठ । नणद कसूमल कांचली है तो नणदोई गजमोतियों का हार । पुत्र घर का चानणा (कुल का प्रकाश) है तो पुत्र-वधू दीपक की लौ । पुत्री हाथ की मूंदडी है तो जमाई चंपे का फूल । उसका पति उसके सिर का सेवरा (मुकुट) है तो वह पति के सेज की सिणगार —

म्हारा सुसरोजी गढ़रा राजवी,
सासूजी म्हारा रतन भंडार,
म्हारा जेठजी बाजूबंद बांकड़ा,
जेठाणी म्हारी बाजूबंद री लूम ।
म्हारो देवर चुडलो दांत रो,
देराणी म्हारी चुड़ले री मजीठ ।
म्हारो कंवर घर रो चानणो,
कुल बहू ओ दिवले री जोत,

म्हारी धीयज हाथ री मूंदड़ी
जवाई म्हारे चंपलो रो फल ।
म्हारी नणद कसूमल काचलो,
नणदोई म्हारे गजमोत्यां रो हार,
म्हारो सायब सिर रो सेवरो,
सायबजी म्हे तो मजारो सिणगार ।

सासू जब जरा-जरा सी बात पर बहू की नुक्ताचीनी करने लग जाती है तो वह परिवार मे शाति बनाये रखने के लिए घर मे अलग होने की बात कहती है। इस कथन मे बहू का सौम्य और सतोषशील रूप प्रकट हुआ है वह धन लोभी और झगड़ालू चित्रित नही हुई है वह बड़े संयम से कहती है, 'सासूजी मेरी बाडी के करेले मत तोडो (परिवार की शाति मत खतम करो) चाहे मुझ बोलना छोड़ दो, मुझे घर मे अलग कर दो। न मुझे पलंग की आवश्यकता है न रजाई की, न खेत-कुए की जरूरत है न लम्बे मकान की। मुझे तो पीहर से दहेज में मिली हुई चीजें और ससुरजी के रहने का कमरा ही बहुत है :—

म्हारी बाडी रा करेला मति तोडो रसिया,
मति बोलो ओ सास अलग कर दो ।
मै तो ढोल्यो नी मागू मै तो सीरक नी मांगू,
म्हारा पियरिया रो खाट मनै अरो बगसो ।
मै तो खेत नी मांगू मै ती कूड़ा नी मांगू,
म्हारा मुसराजी री पाटी म्हारे कूंतो कर दो ।
मै तो मेडी नी मांगू मैं तो ओवरिया नी मांगू,
म्हारा सुसरा जी रो ओबरो अरो बगसो ।

अलग होकर भी पत्नी का ससुराल, पीहर और ननिहाल से अत्यन्त प्रेम है। उसकी उपेक्षा का पात्र यदि कोई है तो उसकी सौत जिसे वह देखना तक नही चाहती। पत्नी के लिए कुंचुकी सिलाई जा रही है। दर्जी से वह कहती है—हे दर्जी वक्षस्थल पर रहने वाले भाग पर तू रसिक पति का चित्र उतार, बगल के पास ननिहाल के व्यक्तियो को और दोनो बाहो पर ससुराल तथा पीहर के परिवार को चित्रित कर। सौत को पीठ पीछे बाधी जाने वाली कसों में सी दे :—

टूंकियां पै लिख मोजी सायबो,
खड्या पै मांय मौसाल।
बाहा पै लिख पियर सासरो,
कसणां मे सीव लौडो सोक।

कितनी सुन्दर भावना है! पारिवारिक सदस्यो के चित्रो को वह किसी कमरे में नही लटकाना चाहती बल्कि अपनी कचुकी को ही वह ऐसी चित्रशाला बना देना चाहती है जिसमे सभी को वह नित्य जब चाहे तब और जिस जगह चाहे वही देख सके। कितना नैकट्य और माहत्वर्य। परिवार को ही परिधान बना लिया है राजस्थानी इस वधू ने और सौत को कस दिया है कचुकी की कसो से ताकि वह तड़प २ कर प्रायश्चित कर ले।

राजस्थानी नर–नारियो का प्रेम वीरता की गोदी मे ही खेला–कूदा है। यहा प्रेम ने वीरत्व को सुनाया नही वरन् जाग्रत किया है। वीर–रस से परिपूर्ण ये लोक–गीत भुजा फड़काने वाले हैं। मुंडन–संस्कार के समय बच्चे में झूझारजी की शक्ति संचरित होने की कामना की गई है। उसका युद्ध–वीर का व्यक्तित्व देखिये :—

झूझारजी वागो तो सोवे राज ने केसरियां,
सोवनडी छै तरवार,
झूझारजी वाग पकड़ घोड़े चढिया।

शत्रु से जा भिड़ा यह वीर अभिमन्यु। मरुस्थल के रेतीले मैदान मे भाले चला रहा है और बर्छियो से शत्रु का दिल दहला रहा है —

सूरा भाला राल्या जी वालु रेत मे।
सूरा बरछियां री बाजी घमरोल॥

बस फिर क्या था–झाडी–झाड़ी मे शत्रुओं की देवलिया (समाधिया) बन गई "सूरा झाडयां वेईगी देवलिया।"

यहा की नारियो (सतियो) ने मुस्कराते हुए अगार का शृंगार किया है। जो नारी दूध ठंडा करते समय दूध के गिर जाने मात्र से जल उठती है वह अग्नि में प्रवेश कैसे करेगी ;—

दूध सीलावत दाझिया,
बाया! कूंकर डोवोली आग ?

सीधा सा उत्तर है जैसे मछली पानी मे तैरती है —

ज्यूं जल डोयो माछली,
ज्यूं बायां ! ज्यूं ई डोवुंलो आग ।

राजस्थान मे वर्षा कम होती है। विलम्ब से भी होती है। बालिकाएं गोवर की डेंडक (मेढ़की) माता बनाकर घर घर घूमती हैं। प्रत्येक घर वाला डेंडक माता को पानी पिलाता है। इस खेल ही खेल मे बालिकाएं वर्षा के इन्द्र से शीघ्र ही बरसने की प्रार्थना करती है :—

डेंडक माता, डेंडक माता,
धोबो धोबो धान गलाव,
डेडकी ने पानी पाव,
इन्दर राजा वेगो आव,
धोरी मक्की रा कोठा भराव,
खाड़ा नाड़ा पूर भराव !

ताकि मक्की से कोठे भर जाय और नद-नाले बह चलें ! निष्कपट हृदय वाले इन बच्चो की बात इन्दर ने सुन ली। वर्षा बरस गई, धान के खेत लहलहा उठे। सामूहिक कटाई शुरू हो गई। सबमे प्रतिस्पर्धा। जो ज्यादा कटाई करेगा उसे नारियल मिलेगा पर नारियल कोई नही चाहता। हर व्यक्ति चाहता है कि नारियल उसके साथी का ही मिले। नारियल ठेठ नागौर का है, चोटी उसकी बीकानेर की है, सांगानेर का सालू है उसका, कच्ची गिरी है उसकी, खेत के उस किनारे पर रखा है —वहा जाने ही से मिलेगा—

लेवो भिड़ीजी नालेरो, नालेरो नागौर रो
चोटी बीकानेर री, सालू सांगानेर रो,
पेलै छेड़ै नालेरो, काची गिरियां नालेरो,
लबी चोटी नालेरो ।

एक साथी ने अपने स्वार्थ को दूसरे के लिए समर्पित कर दिया है। पति-पत्नी मे भी यह सहयोग-भावना है। पत्नी 'कडब काटने' में अपने सौन्दर्य को खिलता हुआ देखती है। वह पति से कहती है—'तुम भी जवान हो' मैं भी जवान हूं। दोनो की बडी सुन्दर जोडी है। काम करने से इस जोड़ी की सुन्दरता और भी बढेगी —

कड़बी काटेनी मोटियार,
थूं म्हारी जोड़ी रो जवान,
जोड़ी जुत जा रै जवांन ।

देवर-भाभी ने भी प्रतियोगिता की है। भाभी की चुनौती है-'देवर लाला ! आने दो अपनी पूरी ताकत से हंसिया। मैं भी देखूं जरा तुम्हारे दूध की ताकत ! मेरी सास के लाडले, आने दो अपनी पूरी ताकत से हंसिया। देखूं तो जरा सास के दूध की ताकत –

देवर नै भौजाई, बावल, बावो नी दातलियो,
दूधां रा पियाकड़, देवरजी, आवण दो दातलियो,
छाछां री पियाकड़, भावज, आवण दे दातलियो,
सासू रा चूंग्योड़ा देवर, आवण दो दांतलियो।

देवर दूध पीने वाला है, भावज छाछ पीने वाली है। छाछ और दूध का जोर किस ढंग मे तोला जा रहा है ?

इस प्रकार राजस्थानी लोकगीतो मे प्रेम, करुणा, वीरता आदि के शत-शत सुन्दर चित्र उतारे गये हैं। ये चित्र वास्तविक और हृदय को प्रभावित करने वाले है। इनका रंग इतना गहरा है कि ये काल की आधी और वर्षा से कभी न धुलेंगे वरन और भी निखार पाते रहेंगे। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन सही है कि "लोक-गीत की एक एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएं, खण्डिताएं, और धीराएं न्योछावर की जा सकती हैं क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारो से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नही है और अपने आप मे परिपूर्ण हैं।"

————
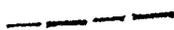
डा० एल० पी० तैस्सितोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व

इटालियन होने पर भी सपनो का देश भारत जिसकी कर्म-भूमि का क्रीड़ा-केन्द्र रहा, विदेशी भाषाभिज्ञ होकर भी जिसने भारतीय भाषाओ का मन्थन कर, लोक-मानस को अपनी साधना के नवनीत से स्निग्ध एवं संतुष्ट किया, ईसाई मत का अनुयायी होकर भी जिसका हृदय जैन धर्म की सैद्धान्तिक विचार धारा और प्रयोगात्मक ज्ञानधारा की ओर उन्मुख हुआ, इटली की वनस्थली मे विहार करता हुआ भी जिसका मस्तिष्क राजस्थान की 'रंग और रण के विधान' में पगी हुई रत्नगर्भा माटी को अपने ज्ञानतन्तु की नोक से कुरेदता हुआ साधना पथ पर बढता रहा। ऐसे विराट, उदात्त एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व के स्मरण मात्र से ही हमारे हृदय की शत-शत भावनाएँ उसके चरणो मे लौटने लगती हैं। इस अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी है डॉ० एल० पी० तैस्सितोरि।

जीवन वृत्त :

आपका जन्म १३ दिसम्बर १८८७ को इटली के प्रसिद्ध नगर उदीने (Udine) मे हुआ था। आप जन्मजात प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए थे। भाषा जैसे गूढ और नीरस विषय की ओर मेधावी छात्र तथा जिज्ञासु होने के कारण बचपन से ही आपकी रुचि थी। इटली मे रह कर ही बिना किसी शिक्षक के, केवल पुस्तको की सहायता के बल पर आपने अंग्रेजी, लेटिन, ग्रीक, जर्मन, संस्कृत, प्राकृत, पुरानी गुजराती, नयी गुजराती, अपभ्रंश, राजस्थानी (मारवाड़ी), डिगल, हिन्दी, व्रज, उर्दू, आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह ज्ञानार्जन आपने केवल ग्रन्थो को पढ़ने के लिए ही नही किया था प्रत्युत आप उसमे ठोस और गम्भीर शोध कार्य करना चाहते थे। आपने २१ वर्ष की आयु तक इटली की फ्लोरेन्स यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त की। अंग्रेजी मे एम. ए करने के बाद आप शोध-कार्य मे लग गये और इसी यूनिवर्सिटी ने आप को 'रामचरितमानस' निबन्ध पर पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की। इस निबन्ध मे आपने तुलसी के 'मानस' के साथ वाल्मीकि के रामायण का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जो आपके अथक परिश्रम,

१—तैस्सितोरि दिवस (२२ नवम्बर, १९५६) पर आयोजित 'अखिल भारतीय फूलचंद बाठिया लेख प्रतियोगिता' मे प्रथम पुरस्कृत।

अदम्य साहस और सूक्ष्म निरीक्षण का ज्वलन्त प्रतीक है । तुलसी आपका प्रिय कवि बन गया जिसके कृतित्व की पंक्ति-पंक्ति मे भारतीय सस्कृति का रूप निखर उठा है । इसी परम्परा को आगे बढाते हुए आपने 'तुलसी पर शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य का प्रभाव' शीर्षक खोजपूर्ण, दार्शनिक तत्वो का विवेचन और विश्लेषण करते हुए एक निबन्ध लिखा जो आपके गहन अध्ययन एवं अतल-स्पर्शी ज्ञान का परिचायक है । आप केवल भावुक-कलाकार ही न थे वरन् वीर सैनिक भी थे । सन् १९११ मे २३ वर्ष की आयु मे आप मिलान की फौज मे भर्ती हुए और वहां कुछ महीनो तक कार्य किया । इस प्रकार आपके व्यक्तित्व के एक हाथ मे कलम और कागज है तो दूसरे हाथ में तोप और बन्दूक ।

स्वप्न-भूमि भारत मे पदार्पण :

बचपन मे आप भारत के विषय मे नाना प्रकार की कल्पनाएँ किया करते थे । यही आपके सपनो का देश था, भावो का सम्बल था, और प्रेरणा का स्त्रोत था । आपको यह प्रबल इच्छा थी कि भारतीय भाषाओ का अध्ययन भारत की पावन और प्रेरक गोद मे ही किया जाय । इसी विषय को लेकर आपके और जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरिजी के बीच काफी पत्र-व्यवहार चला। आचार्यश्री ने अपनी "यशोविजय-जैन पाठशाला पालीताना" के अध्यापक के लिए आपको निर्मंत्रित भी किया पर आप कुछ शर्तो के कारण न आ सके । आखिर ग्रियर्सन की सिफारिश से भारतीय दफ्तर लन्दन ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के लिए आपको भारत बुला लिया और बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ राजपूताना के सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर आप नियुक्त कर दिये गये ।

आप नेपल्स से २४ मार्च १९१४ को भारत के लिए रवाना हुए और ८ अप्रैल १९१४ के प्रात· १० बजे बम्बई तट पर जहाज से उतरे । आपके घनिष्ट मित्र S.R. Harganhalli ने आपका अभूतपूर्व स्वागत किया और डॉ. नादगर के घर पर ठहराने का प्रबन्ध किया । दूसरे दिन कलकत्ता के लिए रवाना होकर ११ अप्रैल को प्रात: ७ बजे वहां पहुचे और कान्टीनेन्टल होटल मे ठहरे । ग्रीष्माधिक्य से कुछ समय के लिए रुक कर अंततः २२ जुलाई की शाम को शोध-कार्य के लिए राजपूताने की ओर प्रस्थान किया ।

राजपूताने मे शोध-कार्य :

जिस देश को देखने की प्रबल उत्कंठा थी, तीव्र जिज्ञासा थी अमित पिपासा थी, उसी देश मे शोध-कार्य करने लिए आपको धरती की धड़कन नापनी पड़ी । जयपुर से सर इलीयट कॉडबिन पॉलीटिकल एजेन्ट के यहा

२दिन ठहरकर आपने राजपूताने मे भ्रमण का आज्ञापत्र प्राप्त किया और २६ जुलाई को जोधपुर पहुंचकर महाराजा के सोजती गेस्ट-हाउस मे ठहरे। यहा से बीकानेर गये फिर पुनः जोधपुर आये। इस तरह लगभग ५ वर्ष तक आप भारत मे घूमते रहे। १६ अप्रेल १९१९ को आप इटली के लिए रवाना हुए पर वहा पहुचने के ७ दिन पूर्व ही आपकी माता का देहान्त हो चुका था। इस आन्तरिक व्यथा को किसी तरह सहन कर, ४ मास इटली में रहकर दूसरी बार फिर आप भारत लौटे। दुर्भाग्यवश सामुद्रिक यात्रा की कठिनाइयों से आपको निमोनिया हो गया और ३१ वर्ष की अल्पायु मे ही २२ नवम्बर को आप उसी माटी मे (बीकानेर मे) अन्तर्धान हो गये, जिस माटी के रक्त-कणों मे आपने अपनी लेखनी को स्वर्णिम बनाया था। ज्ञान की खोज मे आप निकले थे फिर मौत का भय भी कैसा ?

जोधपुर और बीकानेर मे रहकर आपने श्रमनिष्ट साधना की। अनम्य रत्नों की प्राप्ति मे आपकी आत्मा इतनी तन्मय हो गई कि न भूख की चिन्ता रही न प्यास की। कंटकाकीर्ण पथ पर बढने का ही आपने व्रत ले लिया था क्योंकि 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब' ही आपके जीवन का मूल-मंत्र बन गया था। चिलचिलाती धूप से तप कर धरती तवा बन जाती, लू के गरम-गरम प्रचण्ड झोके जब हृदय को दहला देते, 'दीरघ दाघ निदाघ' के भय ने जब लोग खसखस की टट्टियां लगाते और तहखानो मे जा छिपते तब कहीं यह ज्ञान का एकान्त पुजारी प्राणो की बाजी मार कर रेतीले टीलो मे जलकर मां भारती की आरती उतारता, पैदल घूम-घूम कर सुषुप्त चेतना को जाग्रत करता, अनन्त ज्वालामुखियो को हृदय मे छिपाकर शुष्क मरुस्थल मे पुण्यतोया रसवन्ती ज्ञान-ंगा को प्रवाहित करता।

सितम्बर १९१४ मे नागौर मे आप भंडार देखने गये। वहां कठिनाइयों का आपको सामना करना पडा उनका उल्लेख आपके १३-९-१९१४ के पत्र मे इस प्रकार है—"गये हफ्ते मैं नागौर गया था। जाने का कारण यह था कि नागौर मे दिगम्बरो का एक बड़ा भंडार है जिसमे लगभग १० हजार पुस्तकें हैं। ऐसा सुनने में आया कि वह भण्डार सदैव बंद रहता है और उसका अधिकारी भट्टारक खोलने की इन्कारी करता है। अतः जोधपुर दरबार का आज्ञा पत्र लेकर गया था फिर भी भट्टारक ने कुछ नही दिखलाया। अफसोस की बात है कि इतनी प्राचीन और अमूल्य पुस्तके कीडो का खाद्य होगी।" इस प्रकार की न मालूम कितनी कठिनाइयों को आपने हंसते हँसते पार किया। बीकानेर में आपने वृहत् जैन खरतर गच्छीय आदि कई भंडारो का अवलोकन किया। नगर-नगर, गाव-

गांव मे घूम कर पुराने शिलालेख, सिक्के, मूर्त्तियां आदि अनेक प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया और इसी बल पर आज का बीकानेर म्यूजियम शान के साथ खडा है अन्यथा पहले यहा म्यूजियम भी न था।

दिसम्बर सन् १९१६ में आप देशनोक, जांगलू व सुराणों की कुलदेवी के गांव मोरखाणे भी गये। जांगलू के एक चारण का आतिथ्य स्वीकार कर भारतीयता के रंग मे आप पूरे के पूरे रंग गये। राजस्थान की गरीब जनता आपके प्राणों की स्पन्दन बन गई। राजस्थान की रजत-भूमि जब स्निग्ध ज्योत्स्ना का स्पर्श पाकर चमक उठती तब आपका अपनी जन्म भूमि से साक्षात्कार हो जाता भारतीय सांस्कृतिक चेतना आपके हृदय-मन्दिर मे बैठकर आत्म-गायन करने लगती। बाह्य एवं प्रान्तीय प्राचीर को ध्वन्त कर आपने मानवता को गले लगाया। 'भारतमाता ग्रामवासिनी' का स्पष्ट चित्र आपके मानस पटल पर अंकित होगया और जहां भी आप गये ग्रामीण जनता ने छाछ, दूध, दही और राबडी से आपका हार्दिक स्वागत किया। इसी प्रेम को व्यक्त करते हुए आपने कहा—" I am not an Englishman to look down upon all that is not English or at least European, I have the highest respect and admiration for the Indian people."

साधना का नवनीत :

राजस्थान की माटी का मन्थन कर आपने जो अमृत निकाला वह अब भी हमे प्रेरणा और प्रकाश दे रहा है। आपने जो शोधकार्य किया उसका विवरण सोसायटी ने अपनी सन् १९१४, १९१५, १९१६ व १९१७ की चार रिपोर्टों मे प्रकाशित करवाया है। ' A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts' के नाम से Bardic Poetry के Part I and II और Prose Chronicles के Part I and II प्रकाशित हुए हैं। इनमें जोधपुर और बीकानेर राज्य मे पाये गये हस्तलिखित ग्रंथो का विवरण केवल List (सूची) के रूप मे ही नही है प्रत्युत उसमे ग्रंथो का सागोपाग वर्णन भी समाहित है। उदाहरणतः 'गाडण पमाइत री कविता ने औरा री फुटकर कविता' शीर्षक ग्रंथ के विषय मे आप लिखते है.—

'A Ms. in the form of a book $7\frac{3}{4}$" × $8\frac{1}{4}$" in size. Originally consisting of 232 leaves but now reduced to only 140, 92 of the external leaves having gone lost.

The leaves that remain at present are numbered from 47 to 186. Each page contains 12-14 lines of writing of 18-25 aksharas each. Beautiful and accurate Marwari-devanagari hand-writing. The Ms. is undated, but appears to have been written during the Samvat century 1700."

इस प्रकार सभी हस्तलिखित ग्रंथो का आपने परिचय दिया है। इस परिचयात्मक टिप्पणी मे आपका सूक्ष्म निरीक्षण, गहन अध्ययन और मौलिक अनुसंधान स्पष्ट झलकता है। यही नही Ms. मे लिखित विभिन्न रचनाओ का ऐतिहासिक और विषयगत परिचय भी दिया गया है। कोई भारतीय विद्वान अगर इनका विवरण प्रकाशित करता तो संभवत. सूची भर दे देता। पर यह काम तो इटली के उस स्वेद-साधक ने किया जिसने जान लिया था कि "Art is not a pleasure trip, it is a battle, a mill that grinds."

आपके शोध-कार्य से राजस्थानी साहित्य का ही वास्तविक रूप सामने नही आया अपितु यहां का सास्कृतिक एवं राजनैतिक इतिहास भी मुखरित हो उठा। ज्ञात से अज्ञात की ओर जाकर आपने राजस्थान के अन्तस् मे छिपे अनेक मार्मिक रहस्यो का उद्‌घाटन किया। इन Mss. की खोज के महत्व का उल्लेख करते हुए आपने Prose Chronicles Part I की भूमिका मे लिखा है कि "Almost the generality of these works being anonymous and titleless, the number under which they are registered in the present catalogue will enable one easily to cite them in any work of historical research that may be compiled in future." वस्तुत. जब हम ख्यात, वात, विगत, वंशावली पीढ़ियां आदि का सिंहावलोकन करते हैं तो 'वर्तमान की चित्रपटी पर भूतकाल संभाव्य' बन जाता है। इन अज्ञात ग्रंथो की महत्ता के विषय मे आप Bardic Poetry part I की भूमिका मे लिखते हैः— "It is a literate that is almost al-together dead to day, but all the more precious are the relics of its exuberant growtn in the past" इस प्रकार राजस्थानी भाषा के अलभ्य एवं अज्ञात रत्न-ग्रन्थो को विश्व पारखियो के सामने रखकर आपने एक महान अनुष्ठान को सम्पन्न किया है जिसके लिए राजस्थानी भाषा-भाषी संसार ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी संसार ऋणी रहेगा।

तीन महत्त्वपूर्ण डिंगल-ग्रन्थों का सम्पादन :

इटली मे रहकर ही आपने विभिन्न भारतीय भाषाओ का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर लिया था। डिंगल भाषा से आपको विशेष स्नेह था। आप ही के शब्दो मे "मुझे जितना प्रेम मेरी मातृभाषा इटालियन से है, उससे अधिक प्रेम मारवाड़ी भाषा से है; क्योंकि उसमे बल, ओज और मिठास है।" इसी प्रेम के वशीभूत होकर आपने निम्न लिखित तीन ग्रंथो का सम्पादन किया, जिनका प्रकाशन बंगाल की एशियाटिक सोसायटी ने किया।

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौर राजा प्रीथिराज री कही।

(२) वचनिका राठौड रतनसिंहजी महेषदासोत री खिडिया जगा री कही।

(३) छंद राउ जइतसी रो।

वेलि क्रिपन रुक्मणी की कथा लोकप्रिय कथा है। भीष्मक अपनी कन्या रुक्मणी का विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहते हैं पर रुक्मणी कृष्ण से प्रेम करती हैं। शिशुपाल बरात सजाकर आता है और इधर रुक्मणी कृष्ण को पत्र भेजती है। अम्बिका पूजा के मिस अम्बिकालय मे कृष्ण उसका हरण करते हैं, युद्ध होता है जिसे बलभद्र की सहायता से कृष्ण जीतते है। दोनो के सयोग से प्रद्युम्न का जन्म होता है। डा० टैसीटोरी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन कर और इसकी भूमिका लिखकर प्रकाश-स्तम्भ का कार्य किया है। राजस्थान मे क्या विश्व साहित्य के किसी भी उच्चकोटि के ग्रन्थ के सामने वेलि को सहर्ष रखा जा सकता है। आपने स्वयं इसे 'One of the most fulgent gems in the rich mine of the Rajasthani literature' बताया। इसकी भूमिका मे आपने इसकी महत्ता बतलाते हुए रचयिता के जीवन की प्रासंगिक घटनाओ का उल्लेख किया है साथ ही समकालीन कवि लोकनायक तुलसीदासजी से प्रीथिराज की तुलना भी की है। यही आपने डिंगल को पिंगल की अपेक्षा अधिक सगीतात्मक एवं ध्वन्यात्मक मानकर डिंगल के प्रति अपनी गुणग्राहकता का प्रदर्शन किया है। आप लिखते हैं–'It is certain that had Prithi Raja chosen to compose his 'Veli' in emasculated Pingala, he would have given us a very different composition, not superior in musicality and considerably inferior in naivete.' डा० टैसीटोरी के ही प्रकाश-पथ पर चलकर बाद में पारीकजी, दीक्षितजी और स्वामीजी ने वेलि का सम्पादन किया। इसके सम्पादन

के लिए डॉ० साहब ने आठ हस्तलिखित ग्रन्थो का संकलन किया जिनका उल्लेख वेलि की भूमिका मे मिलता है।

वचनिका का सम्पादन भी आपके अध्यवसाय का फल है। इसमें उज्जैन के युद्ध का वर्णन है जो कि संवत् १७१५ वैशाख कृष्णा ६ शुक्रवार को हुआ था। इस युद्ध मे एक ओर जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह जी ने शाही सेना का नेतृत्व किया और दूसरी ओर सम्राट् के विद्रोही पुत्र औरंगजेब और मुराद थे। रतलाम के राजा रतनसिंह के आत्म-बलिदान का इसमें मार्मिक वर्णन है। इसकी भूमिका मे टैसीटोरी ने अपनी खोज-प्रवृत्ति का परिचय दिया है। जगा नाम के दो चारणों का उल्लेख कर आपने विद्वानो का ध्यान इस ओर खींचा है। 'अचलदास खींची री वचनिका सिवदास री कही' से तुलना करते हुए आपने लिखा है कि "It differs from the Vacanika of Achaladasa, the form which is comperatively rude and uncouth, and from all similar works of the Old Dingla period." इसके सम्पादन के लिए आपने ३० Mss. एकत्रित किये जिनमे से १३ के आधार पर इसका सम्पादन किया।

रतनसिंहजी पर Sandu Kumbhakarana द्वारा लिखित 'रतन-रासो' का भी आपने अपनी भूमिका मे उल्लेख किया है जिसमे केवल युद्ध का वर्णन ही नही बल्कि नायक के अन्य साहसिक कार्यो का भी उल्लेख है और जो डिंगल मे न होकर पिंगल मे है।

'छंद राउ जइतसी रो' आपकी कठिन तपस्या का फल है। यह ग्रंथ राजस्थान के सबसे कठिन ग्रन्थो मे से एक है। इसके शब्दो का समझना साधारण व्यक्ति से लिए कल्पनातीत है। राजस्थान का रहने वाला भी इसका अर्थ सुगमता से नही लगा सकता, फिर भी डा० टैसीटोरी ने इसका सम्पादन सुरुचिपूर्ण शैली मे किया है जो उनकी प्रतिभा का आलोक पिंड है। इसमे बीकानेर के राजा जैतसी की रण-कुशलता का वर्णन है जिसके द्वारा उन्होने बाबर के पुत्र कामरा-जो कि भटनेर पर कब्जा करने के बाद बीकानेर की ओर बढ़ा था—पर विजय प्राप्त की। इसका रचना काल संवत १५९१ है। इसका लेखक अज्ञात है। इसकी भूमिका भी आपके मनन और चिन्तन की प्रकाशिका है।

आपने भूमिकाओ के साथ साथ इन ग्रन्थो मे Notes and Glossary का भी विधान किया है जो आपकी भाषा वैज्ञानिकता का प्रतीक है। जब ग्रन्थो का पठन करते हैं तो रह रह कर यह प्रश्न सामने आता है कि कैसा होगा डा० टैसीटोरी का दिमाग जिसने भारत मे दूर रह कर, इटली मे जन्म लेकर, भारतीय विशेष कर डिंगल भाषा पर अपना इतना अधिकार जमाया।

जबरदस्त भाषा-वैज्ञानिक :

भारतीय भाषाओं के प्रति आपका सहज आकर्षण था। बचपन से ही भाषा का गाम्भीर्य आपका मर्म बन गया था। इसी से प्रेरित होकर आप अनेक भाषाओं के ज्ञाता बन गये। ऐसा कहा जाता है कि भाषा अपने आप सीखी नही जाती पर आपने अन्तर्प्रेरणा से केवल पुस्तकों के बल पर भाषा-ज्ञान प्राप्त कर अपनी असाधारण प्रतिभा की छाप जन-मानस पर छोडी। अपनी भाषा प्रवृत्ति के संबंध मे तारीख ६-६-१३ के पत्र मे आपने लिखा—"प्राकृत भाषा से मुझे बहुत शौक है। अपभ्रंश और वर्तमान मे प्रचलित भाषाओं का परस्पर क्या संबंध है, इस विषयक मैं अभ्यास कर रहा हूं। यहां की फ्लोरेन्स की लाइब्रेरी मे से पुरानी गुजराती की कुछ प्रतियाँ मिली है। इन पर से अपभ्रंश द्वारा गुजराती की मूल उत्पत्ति खोज निकालने का प्रयास कर रहा हूँ।"

कितना उत्कट प्रेम विदेशी भाषाओं के प्रति, कितनी बड़ी जिज्ञासा नये ज्ञान के प्रति, कितनी सजग प्रबुद्धता अपने लक्ष्य के प्रति।

आपने पुरानी पश्चिमी राजस्थानी पर "Notes on the Grammar of the Old Western Rajasthani with special reference to Apabhramsa anb Gujarati and Marwari" शीर्षक निबन्ध लिखकर महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी निबन्ध के बल पर डिंगल का साहित्यिक रूप विश्व के सामने आया और भारतीय वाङ्मय मे उसे स्थान मिला। यह निबन्ध 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' मे धारावाहिक रूप से १९१४ के अप्रैल, मई सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर तथा सन् १९१५ के जनवरी से जुलाई तक और सन् १९१६ के जनवरी तथा जून के अंकों मे प्रकाशित हुआ था। इस निबन्ध के भाषा वैज्ञानिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी-भाषा' मे लिखा है कि "पुरानी राजस्थानी की उच्चारण-रीति, रूप तत्व और वाक्य रीति के पूरे विचार के साथ टैसीटोरी द्वारा की गई आलोचना ऐसी महत्वपूर्ण है कि इसे राजस्थानी (मारवाडी) तथा गुजराती भाषा तत्व की बुनियाद कहा जाय तो अत्युक्ति नही।"

फ्लोरेंस के Regia Biblioteca Nagion ale Centrale के भारतीय संग्रह में कुछ प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के हस्तलिखित ग्रन्थ डा० टैसीटोरी को मिले और उन्हीके आधार पर यह निबंध लिखा गया। स्वयं डा० साहब के शब्दो में "नव्य भारतीय भाषा विज्ञान के इस महत्वपूर्ण विषय पर भारत मे कभी गए बिना ही, काम करने का साहस करने वाला मैं पहला

यूरोपियन हूं।" और वस्तुतः भारत के विदेशी भाषा-वैज्ञानिकों में आपका प्रथम स्थान है।

सबसे पहले डा० ग्रियर्सन ने सन् १९०७ और १९०८ मे 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' के दो जिल्दों में राजस्थानी का 'वर्णनात्मक व्याकरण' प्रस्तुत किया था। पर इसमें सबसे बड़ी कमी थी ऐतिहासिक परम्परा का। जिसके बिना भाषा के विकास की रेखा धूमिल एवं अस्पष्ट थी। इस कमी को डॉ० तैस्सितोरी ने पूरा किया। डा० तैस्सितोरी के पहले किसी भी व्यक्ति ने आधुनिक भारतीय भाषाओं मे से किसी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण प्रस्तुत नहीं किया। इस दृष्टिकोण से डा० तैस्सितोरी का उक्त निबन्ध राजस्थानी का ही नहीं वरन् भारतीय-आर्यभाषा के ऐतिहासिक व्याकरण की नींव कहा जा सकता है। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के द्वारा डा० तैस्सितोरी ने "अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की इस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिसके बिना किसी आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता।"[२]

जिन २२ जैन हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर डॉ० तैस्सितोरी ने राजस्थानी व्याकरण का विवेचन किया है उनसे अपभ्रंश काल के बाद की भाषा के ध्वनि परिवर्तन की प्रवृत्तियों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से आपका ध्वनि सम्बन्धी ज्ञान बहुत व्यापक एवं उपादेय है। आपके इस निबन्ध का अनुवाद श्री नामवरसिंह ने 'पुरानी राजस्थानी' नाम से पुस्तकाकार में किया है जिसका प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा से करवाया है।

इस निबन्ध के अतिरिक्त आपने और भी भाषा विज्ञान सम्बन्धी कई लेख लिखे हैं जिनमे महत्वपूर्ण निबन्ध निम्नलिखित कहे जा सकते हैं।

१. Origion of the Dative and Genetive and Dative Post position in Gujarati and Marwari. 1913.

२. Some Grammatical forms in the old Baiswari of Tulsidasa 1914.

३. The wide sound of 'E' and 'O' in Marwari and Gujarati (Ind. Ant. Sept. 1918).

जैनधर्म के प्रति अनन्य अनुरागः

आप जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरिजी के अनन्य उपासक एवं शिष्य थे। जैन धर्म के सिद्धान्तों को अपने जीवन मे भी उतारा। जैन-साहित्य का व्यापक अध्ययन कर आपने विभिन्न ग्रन्थों का सम्पादन किया। इटली मे रहते हुए भी

आपका आचार्यश्री से पत्र व्यवहार चलता रहा। सर्व प्रथम प्रो० जैकोबी के प्रेरणा करने पर आपने ११ अप्रैल १९१३ को उदीने से आचार्यश्री के नाम एक पत्र लिखा जिसमे आपने धर्मदास की 'उपदेशमाला', 'श्रेणिक की कथा' और जयवल्लभ कृत 'वज्जालग' के सम्पादन व भाषानुवाद करने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की। और साथ मे यह भी लिखा कि 'मुझे पूरा विश्वास है कि भारत, उसके साहित्य तथा जैन धर्म के प्रति मेरा प्रेम देखकर आप मुझे अवश्य सहायता देगे।' फलतः आचार्यप्रवर ने आपको 'उपदेशमाला' और 'श्रेणिक की कथा' की हस्तलिखित प्रतियाँ भेजी।

गुरु के प्रति आपकी असीम श्रद्धा थी। गुरु का शान्त एवं गंभीर व्यक्तित्व सदैव आपकी पुतलियो मे लहरता सा प्रतीत होता था। गुरु के दर्शनो की तीव्राभिलाषा आपको विह्वल बनाने लगी और आप भारत आने के लिए प्रयत्न करने लगे। आखिर आपका सपना साकार हुआ और सर्व प्रथम आपने एरिनपुरा मे उस दिव्य मूर्ति से साक्षात्कार किया जो तिरछी होकर आपके हृदय मे गढ गई थी। अल्पकालीन सम्पर्क ने आपको अत्यन्त प्रभावित किया और आप अनन्य सेवक बन गये। दूसरी बार आपकी आचार्य श्री से भेट ८ जून १९१७ शुक्रवार को २ बजे राणी नामक गाव मे हुई। तीसरी बार तो आपने उनके साथ पद-विहार किया जब आचार्य श्री ने सादड़ी मे राणकपुर की ओर प्रस्थान किया था।

इटली मे रहकर आपने जैन साहित्य विषयक सम्पादन कार्य करना चाहा। आचार्य श्री ने आपको 'अहिसा—दिग्दर्शन, 'जैन-शिक्षा, 'जैन-तत्व' आदि पुस्तके भेजी। 'जैन-शासन' नामक समाचार पत्र पाकर तो आप इतने हर्षित हुए कि तुरन्त वार्षिक चन्दा भेजने को उद्यत हुए। समय समय पर आचार्य श्री के द्वारा प्रेषित जिनकीर्तिसूरी कृत षड्भाषास्तवन, महाजन वंश मुक्तावलि, चित्तौड़ की गजल, राजा गजसिह का निर्वाण, पद्मणी चौपाई (अपूर्ण) ऐजन (पूर्ण) गौडी पार्श्वनाथ स्तवन आदि पुस्तको का मन्थन कर आपने जैन साहित्य के प्रति श्रद्धा प्रकट की।

आपकी पत्र लिखने की प्रवृत्ति बडी रोचक एवं हृदय-हारिणी थी। आपने आचार्य श्री के नाम कुल २० के लगभग पत्र लिखे। उनमे से कुछ उदीने से और कुछ भारत का भ्रमण करते समय विभिन्न स्थानो से लिखे। १४ पत्र आपने अंग्रेजी मे लिखे एक पत्र हिन्दी और अंग्रेजी दोनो मे और पाच पत्र हिन्दी में लिखे। पत्रो मे आपने अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। हिन्दी के प्रति आपका उत्कट प्रेम था और इसी प्रेम से प्रेरित होकर आपने आचार्य श्री

को लिखा कि आप मुझे जो पत्र लिखा करे वे गुजराती अथवा देवनागरी लिपि मे ही लिखा करे।

भारतीय जन-जीवन के साथ आप 'पानी मे को लोन' की तरह हिलमिल गये थे। जिसका सबूत आपका यह कथन है कि "मै भारतीय लड़की के सिवाय किसी दूसरी से शादी नही करूँगा।" और वस्तुतः आप आजन्म अविवाहित रहे। मास भक्षण करना भी आपको रुचिकर न था। इस विषयक चर्चा करते हुए आपने आचार्य श्री को १६ अक्टूबर १९१३ के पत्र में लिखा कि 'हमारा ईसाई धर्म यह सिखलाता है कि ईश्वर ने जितने भी जीव-जन्तु बनाये है वे मानव के हित के लिए ही। अत. उन्हे खाना कोई पाप कर्म नही। पर ४ वर्ष पूर्व फ्लोरेन्स मे दो ब्राह्मणो के बीच हुई चर्चा मे प्रेरित होकर मैंने १ वर्ष के लिए मास भक्षण छोड़ दिया था। फलस्वरूप मेरा स्वास्थ्य बिगड गया और वैद्यो की सलाह के कारण फिर से मुझे उसका सेवन करने को विवश होना पडा। पर है यह मेरी इच्छा के विरुद्ध। जब मैं भारत आऊँगा तो आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसका सेवन अवश्य छोड दूंगा। यहाँ भी मैं मास के नाम पर सिर्फ अण्डे ही खाता हूँ, वह भी सप्ताह मे दो या तीन बार।" और भारत आने पर आपने वस्तुत. मास का सर्वथा प्रकारेण त्याग कर दिया। पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ ने आपके निमित्त भारतीय शाकाहारी भोजन का प्रबन्ध कराया। सच तो यह है कि आचार्य श्री के सत्संग से आप जैन श्रावक बन गये थे। श्रावक के आठ व्रतो (प्राणातिपात विरमण व्रत, मृषावाद विरमण व्रत, अदत्तादान विरमण व्रत, अब्रह्मचर्य विरमण व्रत, परिग्रह विरमण व्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्ड विमरण व्रत) का पालन करते थे। केवल चार शिक्षाव्रतो (सामायिक, देशावशिक, पौषध और अतिथि सविभाग) का पालन आचार-भूमि से विशेष सम्बन्ध होने के कारण आप न कर सके।

जैन साहित्य का विश्व-व्यापी प्रचार करने मे आपने महान योग दिया। उपदेशमाला, भववैराग्य शतक, करकण्डु री कथा तथा इन्द्रिय पराजय शतक का इटालियन भाषा मे भाषान्तर किया। श्रेणिक की कथा, जिनमाणिक्यसूरि कृत कुम्भापुत्तकहा, नेमिचन्द्र कृत "सट्ठिसयं" सोमसूरि कृत 'पज्जंता सहणं' पुण्याश्रावक कथा कोष, कल्याणमन्दिर स्तोत्र, आदि कई जैन सूत्रों एवं ग्रन्थो का आपने आलोचनात्मक सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त 'अहिंसा-दिग्दर्शन' आदि कई पुस्तको की समालोचना इटालियन भाषा मे की जिनका प्रकाशन 'जर्नल देला सोसायटा एशियाटिका इटालियना के पत्रो मे हुआ। इस प्रकार जैन धर्म की निर्मलता और निष्कपटता, संयमता और सरलता आपके जीवन

और कृतित्व में पद पद पर दृष्टिगत होती है। एक विदेशी जैन धर्म को इतनी श्रद्धा और स्नेह की आंखों से देखे और दूसरी ओर ईसाई धर्म का भी पूर्णतया पालन करे, आश्चर्य में डालनेवाली बात नहीं तो और क्या है? टैसीटोरी का जीवन इन्हीं विविधताओं और विचित्रताओं से भरा हुआ है।

प्रकाश स्तम्भ :

जिस समय विश्व क्षितिज पर प्रथम महायुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। चारों ओर हिंसा, हत्या और हाहाकार का बोलबाला था, इटली का जन-मानस रणलिप्सा में उन्मत्त हो रहा था उस समय यह मूक साधक सपनों की भूमि भारत का पर्यटन करने निकला, सब कुछ छोड़ कर, केवल लग्न और विश्वास का सम्बल लिये, गौतम बुद्ध की तरह ज्ञान की खोज में। पर यह ज्ञान की खोज अपने लिए नहीं, अपने देश के लिए नहीं, प्रत्युत भटकती मानवता को आश्रय देने के लिए, बिलखती सभ्यता को धीरज बंधाने के लिए और बिखरी संस्कृति को एक सूत्र में पिरोने के लिए।

प्रहलाद की भांति जो रेत के टीलों को छानता फिरा, आंधियों और तूफानों में अकेला लड़ता रहा, शूलों का पान कर जो विजन वनस्थली में पलता रहा पर कभी आह नहीं की। प्रताप की तरह भावुकता के आगे जिसकी साधना कभी नत नहीं हुई, अविराम जलती हुई श्रम की वार्ती कभी मन्द नहीं हुई, द्रुत गति से चलती हुई लेखनी कभी बन्द नहीं हुई। वे कर्मठ कर्मयोगी डॉ० टैसीटोरी आज हमारे बीच नहीं हैं। लेकिन उनके कृतित्व में प्रतिबिम्बित उनकी आत्मा आज भी अपना अमर सन्देश देश-देशान्तरों में प्रसारित कर रही है कि मानव मात्र एक है। काले गोरे की रंग भेद नीति, बाहरी राष्ट्रीय परिसीमाएं और साम्राज्य लिप्सा की शोषक प्रवृत्तियां निर्मूल, मिथ्या एवं अहितकारी हैं। विश्व कल्याण की एक मात्र आधार शिला है विभिन्न संस्कृतियों का परस्पर समन्वय, विविध भाषाओं का आपसी सम्पर्क और विश्व-साहित्य का आदान-प्रदान। जिस शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व (Peaceful-coexistence) की बात आज विश्व के रंगमंच पर अभिनय कर रही है उसका उद्घाटन डॉ० टैसीटोरी ने ही भारत में अपने जीवन की आहुति देकर किया था। हठात् उनके प्रति हमारे मुंह से ये शब्द निकल पड़ते हैं कि 'साहित्यकार की स्याही शहीद के खून से भी पवित्र होती है। उसे जीते जी अपनी हड्डियों और रक्त का दान देकर साहित्य का निर्माण करना पड़ता है और वस्तुतः व्यक्तित्व ही साहित्य बनकर सामने आता है।'

वह दिन दूर नही जब भारत का नवीन दृष्टिकोण से सांस्कृतिक इतिहास लिखा जायगा, तब डॉ० टैसीटोरी का नाम सर्व प्रथम मोटे स्वर्णाक्षरो मे अंकित होगा। कर्नल टॉड के बाद आप ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने राजस्थानी भाषा और संस्कृति को गौरव प्रदान किया। कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने विषय में जो कहा है वह आपके विषय मे भी कहा जा सकता है कि—

'गलाये गलाये वासनार सोना,
प्रतिदिन आमि करोछि रचना।'

(वासना के स्वर्ण को गला गला कर मैं प्रतिदिन रचना किया करता हूँ।)

२२ नवम्बर १९५६ को राजस्थान व्यापी आपका स्मृति दिवस मनाया गया। सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर के तत्वावधान मे आपकी कब्र का उद्‌घाटन भारत स्थित इटली के राजदूत के काउन्सल डॉ० तिबेरियो-तिब्रेरी के द्वारा सम्पन्न हुआ। आपका भौतिक शरीर चाहे आज न हो पर आपकी आत्मा तो अजर अमर है, क्योंकि 'Fame is food that dead men eat.' प्रेम के आसन मे जिनका अमर स्थान है, मृत्यु के शासन मे उनका खोना कोई खोना नही है। देश की मिट्टी से जो हर लिये गये, देश के हृदयो ने उन्हे वरण कर धारण कर लिया है। महाकवि जायसी की ये पंक्तिया आपके व्यक्तित्व के साथ घुलमिल गई है—

"मानुस पेम भएउ वैकुंठी।
नाहि त काह छार एक मूंठी॥"

राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य

राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य वस्तु और शिल्प दोनो मे अपने प्राचीन साहित्य से भिन्न है। यह भिन्नता विरोधमूलक न होकर अभियान-मूलक है। प्राचीन साहित्य में रजवाडो के इतिहास की सामन्तवादी संस्कृति का स्वर अधिक मुखर है तो नये साहित्य मे जनतात्रिक समाजिक चेतना की 'घर्षपूर्ण कहानी का स्वर अधिक तीव्र है। एक में क्षात्रधर्म पर मर मिटने वाले वीरो को भाव भीनी श्रद्धाजंली दी गई है तो दूसरे मे उस अनवरत संघर्ष से उत्पन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओ का मार्मिक चित्र उतारा गया है। राजस्थानी के नये साहित्य की पूर्वपीठिका हिन्दी साहित्य की तरह रीतिकालीन या शृंगारपरक नही है। वह प्रधानतः वीर भावो से बंधी हुई है। उसमे अब यह अपेक्षा थी कि उसकी पूजा के प्रतीक बदल जांय। वैयक्तिक आश्रयदाताओ का स्थान राष्ट्र नायक लें, संघर्षों से मुकाबला करने वाले किसान और मजदूर लें, और यह हुआ भी सही। अत. यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी का नया साहित्य परम्परा के प्रति विद्रोह न होकर परम्परा के क्षितिज पर ही उठने वाले नये सूर्य की प्रगति का आलोक है।

राजस्थानी का यह नया साहित्य प्रधानतः कविता के रूप मे ही लिखा गया है। इस नवीन काव्य धारा का प्रमुख विषय रहा है मानव और प्रकृति। यहाँ जो मानव चित्रित हुआ है वह सामान्य जन का प्रतिनिधि है। उस पर न तो सामन्ती प्रभाव है न अलौकिक आवरण। वह राजा महाराजा से हटकर साधारण किसान, मजदूर और सैनिक बन गया है। वह सबल भी है और दुर्बल भी। उसकी शक्ति का उपयोग राष्ट्र के नव निर्माण मे किया गया है। उसमे रेगिस्तान को हरा भरा नन्दन वन बना देने की क्षमता है, माटी से सोना निपजाने की तडप है और देश की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर देने की साध है। सर्व श्री मुकुल, सुमनेश जोशी, रेवतदान चारण 'कल्पित,' गणेशी लाल व्यास उस्ताद, गणपत चन्द भण्डारी, सुमेर सिंह शेखावत, भीम पाडिया आदि कवियो में मानव की इसी अपराजेय शक्ति का ओजपूर्ण चित्रण मिलता है। प्रबन्ध धारा मे जहाँ इस मानवीय शक्ति को वर्ण्य विषय बनाया गया है वहाँ वह है तो राजघराने से संबंधित, पौराणिक वातावरण से मंडित और कुलीन वंशोत्पन्न पर उसे मानवीय संवेदनाओ से संपृक्त कर जन साधारण के धरातल पर ला उतारा है। श्री कन्हैयालाल सेठिया की "पातल और पीथल" शीर्षक

कविता का प्रता। सामान्य मानव की तरह अर्न्तद्वन्दो से गुजरता है । 'मुकुल' की "सैनाणी" नायक के मोहाभिभूत व्यक्तित्व पर नायिका के प्रेम और कर्तव्य की बलिदानी गाथा लिखकर उसे मर मिटने की प्रेरणा देती है। सत्य–प्रकाश जोशी की "राधा" मे प्रेम लीला का चित्रण न होकर युद्ध से आक्रान्त मानवता का संवेदनशील हृदय बार बार धड़का है। श्रीमन्त कुमार व्यास के "रामदूत" मे और श्री कान्ह महर्षि के "महमयंक" में प्रबन्धात्मकता तो है पर कथा का दृष्टिकोण पौराणिक अधिक है नवीन चेतना से अनु–प्राणित कम। एक मे हनुमान नायक हैं तो दूसरे मे रामदेव। दोनो मे आदर्श चरित्र की अवतारणा की गई है। प्रबन्ध–धारा मे मानव–मूल्यो की दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठा करने वाले हैं श्री नारायण सिंह भाटी। उनके "दुर्गादास" मे कोई कथा नही चलती। दुर्गादास के जीवन की विशिष्ट घटनाओ का वर्णन ही इस ढंग से किया गया है कि एक-एक प्रसंग से मानवीय गुणो की पखुड़ियाँ स्वतः खुलती जाती हैं।

मानव की दुर्जेय शक्ति का आख्यान जहाँ इस काव्य धारा मे मिलता हैं वहां उसकी दुर्बलता, कमजोरी और विकृति को भी तीव्रता के साथ कुरेद कुरेद कर रखा है। मानव मन की इस विकृति और सामाजिक जीवन की विद्रूपता को सबल अभिव्यक्ति देने के लिए हास्य और व्यंग्य का सहारा लिया गया है। इस क्षेत्र मे बुद्धिप्रकाश पारीक और विश्वनाथ शर्मा "विमलेश" के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पारीक की कविताओ मे दैनिक जीवन के साधारण कार्य–व्यापारो को लेकर सामाजिक जीवन की विकृतियो एवं रूढियो का पर्दाफाश किया गया है। "चूंटक्या" और "चबड़का" मे संगृहीत कविताएं एक ओर अपने मुखर व्यंग्य मे समाज को स्वस्थ चिन्तन की ओर अभिमुख होने को सचेत करती हैं तो दूसरी ओर अपने उन्मुक्त हास्य से जीवन मे पैठी हुए विद्रूपताओ को छिन्न भिन्न करती है। "तिरसा" मे पारीक व्यंग्य के साथ साथ रग और जग के भी निकट आये हैं। विमलेश की कविताओ मे व्यक्ति की अपेक्षा समाज की अन्धरूढियो पर किये गये प्रहारो की चोट अधिक तीखी है। उनके हास्य मे एक कथा सी चलती है पर अन्त मे सारा व्यंग्य सिमट कर पाठक और श्रोता को तिलमिला देता है। "छेड़खानी" में सचमुच कवि ने समाज के तथाकथित नेताओ और कार्यकर्त्ताओ से छेड़छाड़ की है।

मानव मन के संघर्ष के साथ साथ उसके प्रेमभाव को भी व्यंजित किया गया है। यह प्रेम भाव अतीत की उज्ज्वल परम्पराओ से रस पाकर राष्ट्रीयता की जड़ो को सींचता है तो चिन्तन की उर्ध्वमुखी दिशाओ मे फैलकर आत्म शक्ति

का दर्शन भी करता है। देश प्रेम की भावना को स्फुरणा देने वाले कवियों मे भी श्रीमुकुल मनोहर शर्मा, करणीदान बारहठ, गिरधारी सिह पड़िहार आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मुकुल की 'सैनाणी' 'कोड़मदे' आदि कविताओ मे क्षात्रधर्म का तेज और बलिदान की पुकार है। मनोहर शर्मा ने "अरावली की आत्मा" को पुनर्जीवित किया है। करणीदान बारहठ ने शाहणी, महामाया, दबेडाआँसू, देसू ठो आदि कविताओ मे नारी जाति की प्रेरणा शक्ति, प्रेम–भक्ति और करुण मूर्ति का दर्शन किया है। पड़िहार की "जागतीजोता" मेघनाद, पूरू, पाबूजी, प्रताप, डूंगजी, जवारजी, बालू आदि महान व्यक्तिओ की जीवन गाथा के जाज्वल्यमान पृष्ठ खोलती है। चीनी आक्रमण के सम्बन्ध मे लिखी गई कविताओ में राष्ट्रीयता का यह स्वर अधिक तीव्र और स्पष्ट है। कन्हैया लाल सेठिया के गीतो मे देश प्रेम के साथ साथ अध्यात्म भावना भी है। दार्शनिक चिन्तन को सहज और सरल ढंग से प्रस्तुत करने मे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। "मीझर" के कतिपय गीत इसके प्रतीक हैं। आध्यात्म क्षेत्र के दूसरे कवि है श्री मनोहर शर्मा। "मरवण" मे वे लौकिक प्रेम को ईश्वरीय प्रेम तक खीच ले गये है। उनका ढोला जीव का, मरण विद्या की और मालवणी अविद्या की प्रतीक है। 'अमरफल' प्रतीकात्मक काव्य है जिस पर कठोपनिषद् की आध्यात्मिक छाया का वितान तना है।

आधुनिक राजस्थानी काव्य ने मानव को जितना महत्व दिया है उतना ही महत्व प्रकृति को भी। इसके पूर्व प्रकृति का सागोपाँग संश्लिष्ठ वर्णन अपने स्वतन्त्र रूप मे देखने को नही मिलता। राजस्थान का मानव जितना सबल और दुर्बल है यहां कि प्रकृति भी उतनी ही रम्य और भंयकर है। पावस की प्राण-दायी फुहार और ग्रीष्म की प्राणविदग्ध लू का मार्मिक चित्रण किया है श्री चन्द्रसिंह ने 'बादली' और 'लू' मे। दोहा छन्द मे लिखी होने पर भी इन दोनो कृतियो मे प्रकृति के जो विविधरंगी दृश्य देखने को मिलते हैं वे पर्याप्त मौलिक और जीव-जगत के क्रिया व्यापारों के सवाक् चित्रपट हैं। नानूराम संस्कर्ता–ग्राम्य प्रकृति के चित्रण में अपनी सानी नही रखते। ऋतुकाव्य मे उनकी कृति 'कलायण' का विशेष महत्व है। उमस आगे, बीजल वेल, धूंआ धबर और मुधर मंगल के क्रम से कवि ने जहां इसमे षट ऋतुओ के वर्णन के लिए अवसर निकाला है वहा राजस्थान की गौरव गाथा के बहुरंगी चित्र भी दिये हैं। 'दसदेव' मे संस्कर्ता ने माँ प्रकृति की गोद में फलने फूलने वाले पांच वन देवो (नीम, खेजडो, फोग, भाड़लो, जाल) और पाच भूमि देवो (कूओ,

ओड़ो, घोरो, खेदड़ , खाण) की आरती उतारी है। प्रकृति के उपेक्षित तत्वों को स्थापना कर कवि ने उनके प्रति मानवीय अनुराग की भावना को सप्राण बनाया है। प्रकृति के एक काल खड ' साझ ' को मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना से अनुप्राणित करने वाले हैं श्री नारायण सिंह भाटी। ' साझ ' का कवि रूढिवादिता और परम्परागत वर्णन प्रणाली से स्वतन्त्र है। वह बंधा हुआ है अपने प्रत्येक छन्द में गाव की सांझ मे उठने वाली उथल-पुथल से। गजानन वर्मा ने परम्परागत 'बारहमासा" को वियोग की ज्वाला से बाहर निकाल कर उसमे नव निर्माण की आग और ताकत भरी है। कहना न होगा कि राजस्थानी के नये काव्य मे चित्रित प्रकृति अधिक व्यक्तित्व संपन्न, समाज सवेद्य और चित्रात्मक है।

राजस्थानी की यह नवीन काव्य धारा शिल्प विधान में भी प्राचीन काव्य धारा से भिन्न है। सूर्यमल्ल मिश्रण तक आते आते 'वीर सतसई' मे सामान्य वीर को विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण तो मिलता है पर भाषा शैली परम्परागत ही रही। राजस्थानी की कविता को रूढिगत भाषायी कठघरे मे बाहर निकाल कर उसे प्रचलित शब्दो के राजपथ पर ला खड़ा करने मे श्री मुकुल का विशेष योगदान रहा है। अब काव्य की भाषा मे न तो वयणसगाई का कठोर आग्रह है न विशिष्ट रूप और स्वभाव वाले शब्दो की एकतानता का मोह। भाषा की भाति ही शास्त्रीय छन्दो के फौलादी शिकंजो मे जकड़ी हुई कविता की आत्मा को मुक्त कराने का श्रेय है श्री नारायण सिह भाटी को। अब राजस्थानी कविता के छन्द दोहा, सोरठा, कुंडलियाँ, छप्पय आदि नही रहे। वह तो छन्दो का शास्त्रीय वंधन तोडकर भिन्न तुकान्त मुक्तक क्षेत्र और लोक धुनो प्रदेश में भी प्रवेश कर गई है। "दुर्गादास" और "राधा" खंड काव्यो में प्रचलित समस्त प्राचीन काव्य शैलियो के प्रति विद्रोह देखा जा सकता है। काव्य रूपो की दृष्टि से भी इस नवीन काव्य धारा ने कई प्रयोग किये हैं। 'गीत कथा' प्रबन्ध और मुक्तक के बीच की स्थिति है। समे कथा को गीतो के माध्यम से आगे बढाया जाता है। मनोहर शर्मा को इस दिशा मे विशेष सफलता मिली है। गीत काव्य की दृष्टि से भी यह काव्य धारा विशेष सम्पन्न है। साहित्यक गीतो में कवित्व के अधिक दर्शन होते ।श्रीकन्हैयालाल सेठिया और सत्यप्रकाश जोशी के गीत उच्चकोटि के हैं। लोक धुनो पर आधारित ध्वनि गीतो की उपलब्धि इस काल की महत्वपूर्ण देन है। लोक जीवन और लोक संगीत का अद्भुत समन्वय हुआ है इन ध्वनि गीतो मे। श्री गजानन वर्मा, कल्याण सिह राजावत, रघुराज सिह हाड़ा, मदनगोपाल शर्मा और लक्ष्मण सिह "रसवन्त" को

ध्वनि गीत लिखने मे विशेष सफलता मिली है। श्री गणेशीलाल व्यास "उस्ताद" ने संगीत एवं नृत्य नाटिकाओ का सृजन कर राजस्थानी भाषा की अपार क्षमता का परिचय दिया है।

राजस्थानी की इस नई काव्य धारा के साथ साथ प्राचीन काव्य धारा भी प्रवहमान है। इस प्राचीन काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं श्री उदयराज उज्ज्वल, नाथूदान महियारिया, रावल नरेन्द्र सिंह, कविराव मोहनसिंह, हनुवन्त सिंह देवड़ा, मुकन सिंह आदि। इन कवियो मे शिल्प विधान तो पुराना ही है पर वस्तु मे देश काल की बदलती हुई परिस्थितियो का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलका है। प्राचीन शास्त्रीय छन्दो मे ही इन कवियो ने राष्ट्र के नव निर्माण को अपनी ओजस्विता और देश के जन नेताओ को अपनी भावभरी श्रद्धांजली समर्पित की है। "धूड़सार" और "भानियारा दूहा" मे उदयराज उज्ज्वल का देश प्रेम हिलोरें लेता हुआ प्रती ोता है तो 'वीर सतसई' मे नाथूदान महियारिया का क्षात्र-धर्म स्वतंत्र भारत की जन शक्ति का बलिदान का पाठ पढाता हुआ दिखाई देता है।

राजस्थानी का नया साहित्य पद्य की भाँति गद्य मे भी मिलता है। यह गद्य प्राचीन गद्य की भाति विविध और विस्तृत तो नही है पर इसमे सामाजिक पक्ष अधिक उभरा है। कथा साहित्य और नाट्य साहित्य के रूप मे ही यह गद्य अधिक लिखा गया है। कथाकारो मे श्री मुरलीधर व्यास, नृसिंह राज पुरोहित, लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, विजयदान देथा और नानूराम संस्कर्ता के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। "बरसंगाठ" श्री मुरलीधर व्यास की कहानियो का सग्रह है। इन कहानियो मे सामान्यतः ग्रामीण वातावरण मे पले निम्नवर्गीय पात्रो को प्रधानता दी गई है—ऐसे पात्र जिनको समाज ने हमेशा उपेक्षित रखा है। 'मतीरा वालो' 'लादैआलो' आदि ऐसे ही पात्र हैं। इनका कही तो उच्च वर्ग से संघर्ष कराया है। कही अपनी ही कमजोरियो से युद्ध। अन्त मे प्रेमचन्दी आदर्श को ही सामान्य रूप से अपनाया गया है। नृसिंह राज पुरोहित की कहानियो मे कलात्मकता अधिक है "रातवासो" की कहानिया यथार्थ जीवन को चित्रित करती हैं तटस्थ दृष्टि से, उसमे प्रेमचन्दी आदर्शवाद का आग्रह नही है। इनमे एक ओर पूंजीवादी सभ्यता पर तीक्ष्ण प्रहार किया है तो दूसरी ओर अन्धविश्वासो को छिन्न भिन्न कर कुल मर्यादा की रक्षा की गई है। वातावरण के सृजन मे लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। लक्ष्मीकुमारी चूंडावत की कहानिया राजस्थानी लोकगाथाओ से प्रभावित है। पुरानी बोतल मे नई शराब भर कर उन्होने जो माझलरात, मूमल, कैरे चकवा वात आदि कृतिया

दी है उनमें कथा का प्रवाह, भाषा का माधुर्य और वातावरण का जीता जागता चित्र देखने को मिलता है। लोकगाथाओ को ही आधार बनाकर कहानियां लिखने वाले हैं श्री विजयदान देथा। इनकी दृष्टि ऐतिहासिक पक्ष पर इतनी नही रहती जितनी समाज विश्लेषण की ओर। इनकी कहानियो में पात्रो का मानसिक द्वन्द्व अधिक उभरा है। वातो की ये फुलवाडियां समाज को स्वस्थ चिन्तन की ओर मोड़ने मे विशेष सहायक होंगी। संस्कर्ता का 'ग्योही' कहानी संग्रह' ग्रामीण जीवन को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

कहानी की भाति राजस्थानी में उपन्यास नही लिखे गये। केवल 'आभे पटकी' उपन्यास सामने आया है। इसमे श्रीलाल नथमल जोशी ने विधवा विवाह की समस्या को उठाया है। परिवर्तित परिस्थितियों में विधवा किशना का विवाह उसके देवर मोहन से करा कर लेखक ने सुधारवादी भावना को बल दिया है। वर्ण्य विषय मे यद्यपि कोई नवीनता नही है तथापि भाषा शैली की रोचकता पाठक को अन्त तक आकर्षण मे वाधे रखती है। बदरी प्रसाद साकरिया की 'अनोखी आन' उपन्यास कोटि की रचना तो नहीं है पर उसमे तोगा की तलवार का जो जौहर चित्रित किया गया है वह पर्याप्त रोचक है। इसमें स्थान स्थान पर पात्रो के संवाद भर राजस्थानी मे हैं।

कथा साहित्य के साथ साथ जो रेखाचित्र राजस्थानी मे लिखे गये हैं वे बड़े प्रभावशाली बन पड़े हैं। 'सबड़का' मे श्री लाल नथमल जोशी के ३१ रेखा चित्र संगृहीत हैं। इनमें एक साथ कविता, कहानी, लेख और संस्मरण का आनन्द आता है। जगह जगह हास्य और व्यंग की पिचकारियां छूटती चलती हैं। यहां जो पात्र हैं वे विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि नही हैं, छोटे लोगों को ही सहानुभूति की आंखो से देखा गया है 'फर्रामल' गुलछर्रामल, मक्खणसा, फड़दपंच, मसाणियां, अचारजी आदि खड़ी भीड़ मे भी आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इनका नामकरण इस ढंग से किया गया है कि उसकी ध्वनि मात्र से पात्र का आधा वैशिष्ट्य स्पष्ट हो जाता है। श्री मुरलीधर व्यास और भंवर लाल नाहटा ने भी कई व्यंग्यपूर्ण रेखाचित्र लिखे हैं।

श्री कन्हैया लाल सेठिया ने गद्य-काव्य के क्षेत्र में भी कई सफल प्रयोग किये हैं। 'गलगचिया' में इनके ६४ गद्य चित्र हैं। इनमें वे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गये हैं। लोक जीवन में व्याप्त उपमाओं का सहारा लेकर, प्रकृति के

विविध कार्य व्यापारों के आलोक में उन्होने जीवन के कई बनते बिगड़ते आदर्शों को देखा है।

नाट्य क्षेत्र मे भी कई प्रयत्न हुए हैं। नाटककारो मे भरत व्यास, आशाचन्द भण्डारी, गिरिधरलाल शास्त्री आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इन नाटको की पृष्टभूमि सामाजिक न होकर ऐतिहासिक रही है। भरत व्यास के 'ढोला मरवण' में नाटकीय रोचकता है। भण्डारी के 'पन्नाधाय' व शास्त्री के 'प्रणवीर प्रताप' नाटक मे कोई नवीनता नही। एकाकी नाटक लिखने वालो में प्रो० गोविन्दलाल माथुर का नाम प्रमुख है। 'सतरंगिणी' मे संगृहीत एकांकी सामाजिक समस्याओं मे सम्बन्धित हैं। ये समस्याएँ चिर परिचित हैं। यथाः दहेज, छूआछूत, बाल विधवा आदि। इनका चित्रण यथार्थ है। इनमे व्यंग्य का जो पुट दिया गया है वह बडा प्रभावशाली है। श्री नागराज ने 'इब तो चेतो' मे ग्रामीण जीवन मे व्याप्त कुरीतियों को एकांकी का विषय बनाया है। इनके एकाकियो में आदर्श का पुट है। प्राय: डाक्टर, मास्टर आदि बीच में आ-आ कर समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत कर देते हैं। श्री नारायण दत्त श्रीमाली ने ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर आधारित सुन्दर एकाकियो का सृजन किया है।

राजस्थानी के साहित्य में अनुवाद की अपनी विशिष्ट स्थिति है। संस्कृत अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियो का अनुवाद राजस्थानी ने इस दशक में प्रस्तुत किया है। कालिदास के 'मेघदूत' के पाच अनुवाद हुए हैं। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि के तीनो शतक, कालिदास के ऋतुसहार, कुमार संभव, रघुवंश, उमर खैयाम की रूबाइयाँ, रवीन्द्र की गीताजलि, रवीन्द्र की कहानियाँ, शेक्सपियर की कहानियाँ, पंचतंत्र की कहानियाँ आदि भी अनुवादित हुई हैं। ये अनुवाद गद्य और पद्य दोनो मे समान रूप से चले हैं। अनुवाद की इस परम्परा का भविष्य काफी उज्ज्वल प्रतीत होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद, प्राचीन राज-स्थानी साहित्य के अनुसंधान एवं प्रकाशन का कार्य तो तीव्र गति से हो रहा है पर सम्प्रति कविता और कहानी को छोडकर अन्य विधाओ मे राजस्थानी के रचनात्मक साहित्य के निर्माण की गति तीव्र नही है। कहानी मे भी लोक-जीवन का वह यथार्थ चित्रण नही मिलता जिसकी आज अपेक्षा है। प्राचीन लोक कथाओ को अपनी भाषा मे रूपान्तरित कर देना अथवा उनका अपने ढंग से

विश्लेषण कर देना महत्वपूर्ण कार्य होते हुए भी मौलिक सृजन तो नही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि राजस्थान के विभिन्न जनपदो में व्याप्त कंजर, भील, गाड़िया लुहार आदि जातियो के जीवन और कार्यो को अपना वर्ण्य विषय बनाकर आचलिक कथा–साहित्य का निर्माण किया जाय। फिर भी जो कुछ लिखा जा रहा है उससे आशा बंधती है कि राजस्थानी में नये विचारो को वहन करने की क्षमता और भावो की सूक्ष्म पकड़ है।

— ——